॥ श्रीमतेरामानुजाय नमः ॥

    

ब्रह्मकर्म- भगवदाराधनविधिः

निवेदको

रामनारायणाचार्यः

आचार्यः

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय)

गङ्गानाथ झा परिसर

प्रयागस्थः

विक्रमाब्दः 2059

॥ श्रीमतेरामानुजाय नमः॥ 2.5



ब्रह्मकर्म-भगवदाराधनविधिः

निवेदको

रामनारायणाचार्यः

पूर्व आचार्यः

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय)

गङ्गानाथ झा परिसर

प्रयागस्थः

विक्रमाब्दः 2063

17. मंगला आरती भगवान् की 103-103
18. श्री वैष्णव मन्त्रविधिः 104-104
19. श्री वेंकटेश सुप्रभातम् 104-106
20. नित्य अनुसन्धेयपाठ 107-108
21. वरद वल्लभास्तोंभ 108-109
22. पञ्चघाटी 109-110
23. श्रीरामानुजस्तुतिः 110-111
24. गुरुपरम्परापाठ 111-112
25. मंगल पाठ एवं श्रीस्तवपाठ 113-114
26. आलबन्दार स्तोत्रम् 114-125
27. श्रुतिसन्देश 126-128
28. पुराणों का मांगलिक सदाचार 128-133
29. शास्त्रों में धर्म का महत्त्व 133-136
30. वेदवाणी 136-137
31. धर्मशास्त्र सुभाषित 137-147

भूमिका

भारतीय संस्कृति का मूल वैदिकसनातनधर्म एवं वैदिक संस्कृति नाम से ही प्रतिपादित है जिसमें वर्णाश्रम व्यवस्था प्राणीमात्र के कल्याणार्थ सदुपदेश-धर्मोपदेश मानवता की मर्यादा एवं उसके पूर्ण सुरक्षा के लिए ही शाश्वत रूप में सनातन ऋषि मुनियों द्वारा प्रसारित है जिसमें भौतिक-आध्यात्मिक अभ्युन्नति अनुप्रमाणित है। जो नित्य कर्म सन्ध्यावन्दन से प्रारम्भ कर पंच महायज्ञ प्रक्रिया के साथ-साथ ब्रह्मचारी-, गृहस्थ-वानप्रस्थ- सन्यास आश्रम के लिए शास्त्रानुकूल वैदिक परम्परा सुप्रतिष्ठित है जिसमें संक्षेप में आहार और सन्ध्यावन्दन के माहात्म्यमय आयामों पर पूर्ण ध्यान देकर उसे प्रभाषित कियागया है और सन्ध्यावन्दोपरान्त गायत्री मन्त्र की महिमा को और उसकी परम उपयोगिता को सभी के लिए नियमतः अनिवार्य रूप में अभिधान का विधान प्रस्तुत किया गया है। तपोनिष्ठा की विशेषता भी अत्यन्त आवश्यक परिभाषित की गयी है।

विशेष रूप में उक्त विषय में ऋषियों की सूक्तियाँ स्पष्टतः जो मानव कल्याणार्थ शास्त्रानुमोदित हैं उन्हें उद्धृत कर उनका भाव भी बोधगम्य प्रदर्शित किया गया है। तिलक धारण व उसका मन्त्र भी निवेदित किया गया है।

इस प्रकार ब्रह्मकर्म = सन्ध्यावन्दन के विधान के साथ ही प्रथम आचार प्रक्रिया पर भी ध्यान दिलाने का प्रयास किया गया है। ब्रह्मगायत्री मंत्र के आवाहन आदि विधि पर भी संक्षेप में विचार किया गया है।

इस प्रमुख ब्रह्मकर्म की विधा में कलियुग में प्राणियों के ऊपर निर्हेतुक कृपा कटाक्ष से भगवान् श्रीविष्णु के परमाराध्य अर्चाविग्रह भगवान् शालग्राम की विशेषता व महत्ता पर भी एवं उनके स्वरूप महात्म्य पूजन माहात्म्य पर भी यथामति सप्रमाण विचार किया गया है।

सामान्यतया भगवान् के आराधन की संक्षिप्त विधि भी बतायी गयी है जो विशेषतः श्री वैष्णव सम्प्रदाय में अब भी पूर्णतः प्रचलित है उसे कतिपय विद्वान् व सम्प्रदाय भले ही स्वरूपतः श्री वैष्णव सम्प्रदाय के लिए ही उपयोगी मानते हैं किन्तु वह सभी सम्प्रदाय के लिए भी है क्योंकि भगवान् विष्णु व उनके आर्चाविग्रह शालग्राम की पूजा सभी करते हैं। इस प्रकार सभी के लिए उपादेय

है। पंच संस्कार व मन्त्रदिक्षाविधान तथा श्रीस्तव आदि का पाठ नियमतः श्री वैष्णवों के लिए अवश्य विशेष रूप में प्रतिपाद्य है जो प्रपत्तिशरणागति आदि मार्ग के अन्य भी अनुयायी हैं उन्हें भी प्रिय है और कल्याणप्रद है।

उक्त विषय में आचार्य कक्षा के अध्ययन काल में परीक्षार्थी रूप में एक परम श्रीवैष्णव की प्रेरणा व आज्ञा से पुराणो-धर्मशास्त्रों आदि का अध्ययन कर तथा गुरूवरों से समझ कर तत्कालीन श्रद्धेय श्री प्रतापनारायणचतुर्वेदी द्वारा प्रकाशित होने वाली सन्ध्यायोग और भगवदाराधन पुस्तक के लिए प्रयास कर कुछ शास्त्रीय विचार संग्रह किया था जो पूर्व प्रकाशित सन्ध्यायोग से भी कुछ ग्रहण किया था सभी साहित्य पुनः प्रकाशित होकर भगवत्सेवा में लाया जा सके प्रतीक्षा में था। वह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ भी चतुर्वेदी जी द्वारा और इस दासानुदास सेवक को निर्देश भी मिला था कि इसका समयानुसार प्रकाशन कर वितरण कर भगवद्भागवत सेवा रूप में कर्तव्य का पालन किया जाय, जो अब तक सम्भव नहीं हो सका।

कुछ समय पूर्व उन्हीं के परिवार के वंशज श्री वैष्णव श्री प्रदीप चतुर्वेदी जी जो केशव प्रेस भी प्रतिष्ठापित कर चुके हैं निवेदन किया गया है कि पूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन कराया जाय। जिसे वे स्वीकार किये हैं सन्ध्या योग और भगवदाराधन प्रकाशित करायेंगे ही।

फिर भी यह सेवक अपने पास संगृहीत सामग्री विशेष को अपने बुद्धि के अनुसार यथाशक्य प्रयास कर कुछ उसमें से कुछ सम्प्रदाय निष्ठ सद्ग्रन्थों से एकत्र कर सामञ्जस्य स्थापित कर भागवत सेवा में प्रस्तुत कर रहा है आशा है विद्वान् मनीषी व श्रीवैष्णव जन त्रुटियों को क्षमा प्रदान करते हुए स्वीकार कर अनुगृहीत करेगें तथा अपना सुधारात्मक सुझाव भी देगें।

भारतीय संस्कृति का निवेदक
रामनारायणाचार्यः
9/90 गायत्रीपुरम् पिड़रा मार्ग
देवरिया, . (उ0प्र0)



तीर्थराजप्रयागस्थश्रीवैष्णवाश्रम श्रीरामानुजकोट संस्थापकानां श्रीरामदेशिकसंस्कृतमहाविद्यालयप्रतिष्ठापकानां श्रीवैकुण्ठधाम-वासिनां श्रीवैष्णवकुलकमलदिवाकराणां परमार्थ भूषणोपाधि-भाजामनन्त श्रीविभूषितानां, श्रीगोविन्दाचार्यस्वामि वर्याणां पादपद्म-मयोस्सादरं समर्पयति-

तदीयोऽन्तेवासी

रामनारायणचार्यः

ऋषियों की सूक्तियाँ

मृतंशरीरमुत्सृज्य, काष्ठ लोष्ठ समं क्षितौ ।
विमुखा बान्धवा यान्ति, धर्मस्तमनुगच्छति ।।

बन्धु-बान्धव गण मनुष्य के मृत शरीर को काष्ठ और मिट्टी के ढेले की तरह श्मशान पर छोड़ कर अपने घरों को लौट जाते हैं, किन्तु एक धर्म ही जीव के साथ जाता है ।

श्रुति स्मृती ममैवाज्ञे, यस्ते उल्लंघ्य वर्तते ।
आज्ञाच्छेदी मम द्वेषी, नरकं प्रतिपद्यते ।।(वराह पु०)

भगवान् कहते हैं, श्रुतियाँ और स्मृतियाँ मेरी आज्ञाएँ हैं; जो उनकी अवहेलना करता है, वह अवज्ञाकारी मेरा द्वेषी है और मरने पर वह नरकगामी होता है ।

दिवा वा यदि वा रात्रौ, यदज्ञानकृतम् भवेत् ।
त्रिकालसन्ध्या करणात्तत्सर्वं विप्रणश्यति ।।
यावन्तोऽस्यां पृथिव्यां हि, विकर्मस्थास्तु वै द्विजाः ।
तेषां वै पावनार्थाय सन्ध्या सृष्टा स्वयम्भुवा ।।(याज्ञ०

दिन अथवा रात में, अज्ञान से किए हुए पाप तीनो कालों की सन्ध्या करने से नष्ट हो जाते हैं । इस धराधाम पर जितने कर्महीन द्विज हैं, उनको पवित्र करने के लिए ब्रह्मा ने सन्ध्या बनाई ।

सन्ध्या येन न विज्ञाता सन्ध्या येनानुपासिता ।
जीवमानो भवेच्छूद्रो, मृतः श्वा जायते ध्रुवम् ।।
सन्ध्या हीनोऽशुचिर्नित्यं, अनर्हः सर्व कर्मसु ।
यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ।। (दक्षः)

जो द्विज सन्ध्या को भली प्रकार नहीं जानता तथा उसकी उपासना नहीं करता वह जीता ही शूद्र हो जाता है और (जब वह मर जाता है) तब उसे कुत्ते की योनि प्राप्त होती है; इसमें सन्देह नहीं। सन्ध्या से हीन पुरुष सदा अपवित्र है तथा किसी कर्म के योग्य नहीं है। वह चाहे जिस किसी अन्य कर्म को करे, उसका फल नहीं मिलता।

ये न पूर्वामुपासन्ते द्विजाः सन्ध्यां न पश्चिमाम्।
सर्वांस्तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत्॥ (म० भा०)

जो ब्राह्मण प्रातः सायं सन्ध्योपासन न करें, धार्मिक राजा ऐसों से शूद्रोचित काम करवावे।

पाठमात्ररता नित्यं द्विजातींश्चार्थवर्जितान्।
पशूनिव च तान् प्राज्ञो वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥

अर्थात् जो ब्राह्मण किसी (धार्मिक) ग्रन्थ का पाठ मात्र नित्य करते हैं, किन्तु अर्थ नहीं जानते, वे पशु के समान हैं। पण्डित जन उनका वाणी से भी आदर न करें।

सायं प्रातस्तु यः सन्ध्यां प्रमादाद्विक्रमेत्सकृत्।
गायत्र्यास्तु सहस्रं हि जपेत्स्नात्वा समाहितः॥

अगर सायं अथवा प्रातः सन्ध्या प्रमादवश एक बार भी छोड़ दी जाय तो स्नान करके और मन एकाग्र कर एक हजार बार गायत्री मंत्र जपे।

सन्ध्यामुपासते येतु सततं शंसितव्रताः।
विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम्॥

जो लोग नियमपूर्वक नित्य ही संध्योपासन करते हैं, वे निष्पाप होकर निरामय ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं।

तस्मान्नित्यं प्रकर्तव्यं सन्ध्योपासनमुत्तमम् ।
तदभावेऽन्यकर्मादावधिकारी भवेन्नहि ॥

इसलिए उत्तम सन्ध्योपासन कर्म नित्य करे, बिना इसके किए दूसरें कर्म का अधिकारी नहीं होता।

सन्ध्योपासनहीनो यो न योग्यः सर्वकर्मसु ।
तस्मादुपास्यविधिना सन्ध्यामन्यक्रियाश्चरेत् ॥

जो पुरुष सन्ध्या नहीं करता वह किसी कर्म का अधिकारी नहीं होता, इससे पहिले सन्ध्या विधि सहित करके तब दूसरे कर्म को करे।

एतत्सन्ध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मण्यं यत्रचेष्टितम् ।
यस्यनास्त्यादरस्तत्र न स ब्राह्मण उच्यते ॥

ये तीन सन्ध्या जो कही गई हैं वे ब्राह्मण के कर्म हैं इनको जो ब्राह्मण आदरपूर्वक नहीं करता, उसको ब्राह्मण नहीं कहना चाहिए अर्थात् कैसा भी कार्य हो तो भी सन्ध्या को न छोड़ना चाहिए। क्योंकि वह ब्रह्मत्व से हीन हो जाता है।

देवाग्नि द्विज विद्यानां कार्ये महति संस्थिते ।
सन्ध्याहानौ न दोषोस्तियतस्तत्पुण्य साधनम् ॥

—स्नानदीपिका

देव सम्बन्धी, अग्नि सम्बन्धी, ब्राह्मण सम्बन्धी अथवा विद्या सम्बन्धी कोई भी काम आ पड़े, तो सन्ध्यावन्दन के छूट जाने में कोई दोष नहीं है। क्योंकि ये कार्य पुण्य के निमित्त हैं।

राष्ट्रभङ्गे नृपक्षोभे रोगार्तो सूतकेऽपि वा ।
सन्ध्यावन्दन विच्छितिर्न दोपाय कथञ्चन ॥
विद्वत्सङ्गे विवादे च यज्ञे भूपति दर्शने ।

सन्ध्यावन्दन लोपोऽयं न दोषो मुनिभिःस्मृतः ॥

—गायत्री पुरश्चरण पद्धति

राजा की अमलदारी न रहने पर, राजा के क्षुब्ध होने पर, रोगी अथवा आर्त्त होने पर, जनन मरण अशौच में यदि सन्ध्यावन्दन न करे तो दोष का भागी नहीं होना पड़ता। विद्वानों का समागम होने पर, यज्ञकार्य में लगे रहने पर, राजा से भेंट करने में, यदि सन्ध्यावन्दन न कर सके, तो मुनियों का कहना है कि, दोष नहीं लगता।

अर्घ्यांता मानसी सन्ध्या कुशवारि विवर्जिता।

— च्यवनः

कुश तथा जल को काम में न लाकर अर्घ्यदान पर्यन्त जो सन्ध्याकी जाती है, उसे मानसी सन्ध्या कहते हैं। यह च्यवन महर्षि का मत है।

जलाऽभावे महामार्गे वन्धने त्वशुचावपि।
उभयोः सन्ध्ययोः काले रजसैवार्घ्य मुच्यते ॥

जहाँ पर जल न मिले, बड़ा रास्ता चलने में, बन्धन में और अपवित्रता में दोनों सन्ध्याओं में धूल से ही अर्घ देवे।

गोकर्णाकृतिवत्पात्रं ताम्रं रौप्यं च हाटकम्।
जलं तत्र विनिक्षिप्य सन्ध्योपासनमाचरेत् ॥

सुवर्ण, चांदी अथवा ताँबे का पात्र गऊ के कान की तरह बनवा कर उसे सन्ध्योपासन के काम में लावे।

यज्ञोपवीतेद्वे धार्ये श्रौतेस्मार्ते च कर्मणि।
तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्रालाभेतदिष्यते ॥

श्रुति स्मृति में कहे हुए कामों के करने में दो जनेऊ पहिनना चाहिए यदि अंगौछा न हो तो उसके बदले में एक जनेऊ और धारण करे।

सन्ध्यामिष्टिं चरुं होमं यावज्जीवं समाचरेत् ।
न त्यजेत्सूतकेवापि त्यजन् गच्छेदधो द्विजः ॥ पुलस्त्यः

पुलस्त्य जी कहते हैं, सन्ध्या, यज्ञ और होम जन्म भर करे; सूतक में भी इन कामों को न छोड़े, जो छोड़ता है, वह अधोगति को प्राप्त होता है ।

सूतके मृतके चैव, सन्ध्याकर्म समाचरेत् ।
मनसोच्चारयेन्मन्त्रान्, प्राणायाममृते द्विजः ॥
सूतके सावित्र्याञ्जलिं प्रक्षिप्य प्रदक्षिणं कृत्वा सूर्यध्यानम् नमस्कुर्यात् । —पैठीनसिः

ब्राह्मण, जनन अथवा मरण के अशौच में भी सन्ध्या करे, मन में मन्त्रों को पढ़े, (जिह्वा से नहीं) और प्राणायाम न करे । सूतक में गायत्री से अञ्जलिदान देकर और प्रदक्षिणा करके सूर्य का ध्यान करता हुआ, नमस्कार करे ।

सूतके कर्मणां त्यागः सन्ध्यादीनांविधीयते ।—संवर्तः

केवल संवर्त का मत है कि, सूतक में सन्ध्या आदि कर्मों को त्याग देना चाहिए ।

सर्वकालमुपास्तिस्तु सन्ध्ययोः पार्थिवेष्यते ।
अन्यत्र सूतकाशौच विभ्रमातुर भीतितः ॥
विष्णु पुराणे

विष्णुपुराण में लिखा है, अशौच, उन्माद, रोग अथवा भय की अवस्था को छोड़, अन्य सब दशाओं में सन्ध्या करनी चाहिए ।

सहवै देवानाश्चासुराणाश्च यज्ञौ प्रततावास्तां वयठं स्वर्गं लोकमेष्यामो वयमेष्याम् इति । तेऽसुराः सन्नह्य सहसैवाचरन्

ब्रह्मचर्येण तपसैव देवास्तेऽसुरा अस्पृध्यंत स्तेना प्राजानंश्स्तेपराभवन्तेन स्वर्गं लोकमायन् । प्रसृतेन वै यज्ञेन देवाः स्वर्गं लोकमायन्नप्रसृतेनासुरान् पराभावयन् । प्रसृतोह वै यज्ञोपवीतिनो यज्ञोऽप्रसृतोऽनुपवीतिनो यत्किञ्च ब्राह्मणो यज्ञोपवीत्यिधीते यजत एव तत् तस्माद्यज्ञोपवीत्येवाधायेत याजये-द्यजेत वा । तैत्तिरीयारण्यक प्रपा० २ अनु०

देवताओं तथा दैत्यों ने एक ही समय में इस अभिप्राय से यज्ञ करना आरम्भ किया कि उन्हें स्वर्गलोक प्राप्त हो । दैत्यों ने सन्नद्ध हो बलमात्र से यज्ञ किया । किन्तु देवताओं ने ब्रह्मचर्य धारण कर और तप कर यज्ञ किया । इसका फल यह हुआ कि अज्ञानता के कारण असुरों का पराभव हुआ और उन्हें स्वर्गलोक न मिल सका । प्रसृत यज्ञ करने से देवता स्वर्गलोक में पहुँच गए और उन्होंने असुरों को हराया । क्योंकि दैत्यों ने अप्रसृत यज्ञ किया था । यज्ञोपवीत पहनकर जो यज्ञ किया जाता है वह प्रसृत यज्ञ कहलाता है और बिना यज्ञोपवीत के किया हुआ यज्ञ अप्रसृत यज्ञ कहा जाता है । ब्राह्मण यज्ञोपवीत पहन कर वेद पाठादि जो कुछ करता है, वह यज्ञ के समान है । अतः यज्ञोपवीत पहन कर ही अध्ययन करे, यज्ञ करावे अथवा करे ।

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च ।
विशिखोव्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥

—कात्यायन स्मृति

ब्राह्मण को उचित है कि सदा यज्ञोपवीत पहने और सदा चुटिया बांध कर रखे । क्योंकि बिना चोटी बाँधे और यज्ञोपवीत धारण किए, जो कुछ कर्म किया जाता है वह सब निष्फल होता है ।

पृष्ठवंशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दते कटिम् ।
तद्धार्यमुपवीतंस्यान्नातिलम्बं न चोच्छ्रितम् ॥
कार्पासि क्षौम गोवाल शणवल्कतृणादिकम् ।
सदा सम्भवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः ॥
स्तनादूर्ध्वमधोनाभेर्नधार्यं तत्कथश्चन ।
ब्रह्मचारिण एकं स्यात्स्नातस्यद्वे बहूनि वा ॥
तृतीयं उत्तरीयं वा वस्त्राभावे तदिष्यते ।

पारस्करगृह्यसूत्र का० २ क० ५ टीका

जो यज्ञोपवीत पीठ तथा नाभि से होकर कमर तक पहुँचे उ धारण करना चाहिए । इससे न बहुत लम्बा हो न बहुत छोटा हो॥२॥ सुविधा के अनुसार कपास, रेशम गोवाल, सन, वृक्ष की छाल अथवा तृण आदि का बना यज्ञोपवीत द्विजों को सदा पहिनना चाहिए ॥३॥ ऐसा यज्ञोपवीत कभी न पहने जो छाती के नीचे न पहुँचे अथवा नाभि के ऊपर न हो, किन्तु नीचे लटकता हो । ब्रह्मचारी को एक यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए और स्नातक को दो अथवा दो से अधिक । उत्तरीय वस्त्र न होने पर, उसके बदले तीसरा यज्ञोपवीत धारण किया जाता है :

उपवीतमलङ्कारं स्रजं करकमेव च ।
उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत् ॥

—शातातपः

उपवीत, आभूषण, माला, जूता, तूम्बा और वस्त्र दूसरे के पहने या बर्ते हुए स्वयं काम में न लावे ।

सूतके मृतके क्षौरे चाण्डालस्पर्शने तथा ।
यज्ञसूत्रं नवीनं तु धार्यं वै मुनिरब्रवीत् ॥

श्वान रासभ संस्पर्शे म्लेच्छादीनां तथैव च ।
मेहनेनाथवाज्ञानान्नाविकं वा स्पृशेद्यदि ॥
तत्क्षणादेव नश्यन्ति कर्मणा द्विज सत्तमाः ।
पतितं त्रुटितं वापि ब्रह्मसूत्रं यदा भवेत् ॥
नूतनं धारयेद्विप्रः स्नानसङ्कल्प पूर्वकम् ।

—वायुपुराण

मनु जी कहते है कि, जनन मरण का अशौच होने पर, क्षौर के उपरान्त तथा चाण्डाल के छू जाने पर, नूतन यज्ञोपवीत पहने । कुत्ता गधा, म्लेच्छ और अनजाने मल्लाह को छू लेने पर,अथवा पेशाब करने या टट्टी जाने के समय यदि दाहिने कान पर यज्ञोपवीत रखना भूल जाय तो, वह ब्राह्मण उसी क्षण समस्त शुभ कर्मों के अधिकार से च्युत हो जाता दे । यदि यज्ञोपवीत कन्धे से उतर कर कमर के नीचे गिर पड़े अथवा टूट जाय तो ब्राह्मण को उचित है कि स्नान तथा सङ्कल्प करके नूतन यज्ञोपवीत पहने ।

पञ्चादशक्षराण्यत्रानुलोमप्रतिलोमतः ।
इत्येवं स्थापयेत्स्पष्टं न कस्मैजित्प्रदर्शयेत् ॥

अ से क्ष तक पचास अक्षर होतें हैं इसको सीधे उल्टे क्रम से स्थापित करके जप करे परन्तु गुप्त रक्खे किसी को दिखावे नहीं । जैसा प्रथम मन्त्र बोले पुनः अं पुनः मन्त्र पुनः आं इसी क्रम से क्षं तक उच्चारण करे अनन्तर विलोम अर्थात् मन्त्र बोल के पुनः क्षं बोले पुनः मन्त्र पुनः हं पुनः मन्त्र पुनः सं इत्यादि क्रम से अ तक पूरा करे । इस प्रकार शत संख्या की माला हुई । यदि अष्टोत्तर शत वर्णों से जपना हो तो इसी क्रम से शत पूरे होने पर अं, कं, चं टं तं पं यं शं वर्ग के आदि अक्षरों को ग्रहण करे । यह मातृका माला—वर्णमाला करके

विख्यात है। इस माला पर जपने से मन्त्र अवश्य सिद्ध होता है और भुक्ति मुक्ति का दाता है।

शौनकीय ऋग्विधान के आरम्भ में लिखा है

प्रथमं लक्ष गायत्री सप्त व्याहृति सम्पुटाम्।
ततः सर्वैं वेद मन्त्रैः सर्व सिद्धिं च विन्दति ॥

सप्तव्याहृति सहित गायत्री एक लाख जपने के उपरान्त ही वेद के मन्त्र सिद्ध हो सकते हैं, अन्यथा नहीं।

न तत्रवीरा जायन्ते न रोगो न शतायुषः।
न च श्रेयोऽधिगच्छन्ति यत्र श्राद्धं विवर्जितम् ॥

जिस घर में श्राद्ध नहीं होता उस घर में वीर सन्तान उत्पन्न नहीं होते, घर वाले कभी नीरोग नहीं रहते और न सौ वर्षों तक जीते ही हैं! ऐसे घर के लोग कल्याण के अधिकारी भी नहीं होते।

कुचैलनं दन्तमलावधारिणां।
बह्वाशिनं निष्ठुर भाषिणं च ॥
सूर्योदये चास्तमिते शयानं।
विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः ॥

मैले वस्त्र वालों को, दाँतों पर मैल रखने एवं बहुत खाने तथा कटु बोलने और सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय सोनें वाले को—भले ही वह स्वयं चक्रपाणि (राजा अथवा विष्णु) ही क्यों न हो, लक्ष्मी त्याग देती हैं।

हृत्कण्ठतालुगाभिस्तु यथासंख्यं द्विजातयः।
शुद्धयेरन् स्त्री च शूद्रश्च सकृत्स्पृष्टाभिरन्ततः ॥

— याज्ञवल्क्यः

ब्राह्मण उतना जल पिए जो छाती तक पहुँचे, क्षत्रिय को उतना जल पीना चाहिए जो गले तक पहुँचे। वैश्य को उतना जल पीना चाहिए जो तालू तक पहुँचे। स्त्री और शूद्र एक बार जल को मुख में डालने से ही शुद्ध हो जाते हैं।

कर्मकुर्वन्नधोवायुनिःसरणेऽश्रुपाते क्रोधे मार्जार स्पर्शे क्षुते वस्त्र-परिधाने रजकाद्यन्त्यजदर्शने आचमेत्। सर्वथाच मनासम्भवे दक्षिणकर्णस्पर्शः।

—धर्मसिन्धुसारः

यदि धर्मानुष्ठान करने में अधोवायु निकल जावे, आँखों से आँसू निकल पड़े, क्रोध आ जावे, बिल्ली छू जाय, छींक आ जावे, वस्त्र बदले, अथवा धोबी आदि अन्त्यजों को देखले तो आचमन करना चाहिए। यदि आचमन करने का साधन मिलना सम्भव न हो, तो दाहिने कान का स्पर्श करले।

सात्त्विकैः सेव्यते विष्णुस्तामसैः प्रमथाधिपः।
राजसैः सेव्यते ब्रह्मा सङ्कीर्णैस्तु सरस्वती॥

ब्रह्मपुराणम्

सात्विक पुरुष विष्णु को, तमोगुणी शिव को, राजसी पुरुष ब्रह्मा को और तीनों की सङ्कीर्णता होने पर, लोग सरस्वती का सेवन करते हैं।

हरिरेकः सदाध्येयो भवद्भिः सत्त्वसंस्थितैः।
ओमित्येवं सदा विप्राः पठध्वं ध्यात केशवम्॥

कैलाशयात्रायां ऋषीन्प्रति श्रीशिवोवाच

एक मात्र हरि ही सत्व में स्थित आप सब लोगों से सदा ध्येय हैं। हे विप्र! ॐ इस प्रकार केशव का ध्यान करो और पढ़ो। यह उपदेश कैलाशयात्रा में श्रीशिवजी ने ऋषियों को दिया था।

नारायणाय नम इत्यमुमेव सत्यम्,
संसारघोरविष संहरणाय मन्त्रम्, ।
शृण्वन्तु भव्यमतयो यतयोऽस्तरागा,
उच्चैस्तरामुपदिशाम्यहमूर्ध्वबाहुः ॥
नृसिंहपुराणम्

संसार रूपी घोर विष के अपहरण के लिए "ॐ नमो नारायणाय" ही मन्त्र सत्य है। इस मन्त्र को राग शून्य अच्छी मतिवाले संन्यासी (यति) सुनें। यह बाँह ऊँची कर और चिल्ला कर मैं उपदेश करता हूँ।

ब्राह्मं मुहूर्त्तमारभ्या मध्यान्हं प्रजपेन्मनुम् ।
अतऊर्ध्वंकृते जाप्ये विनाशाय भवेद्ध्रुवम् ॥
पुरश्चर्या विधावेवं सर्व काम्य फलेष्वपि ।
नित्ये नैमित्तिके वापि तपश्चर्यासु वा पुनः ॥
सर्वदैव जपः कार्यो न दोषस्तत्र कश्चन । पाद्मे

ब्राह्ममुहूर्त्तं अर्थात् प्रहर रात्रि शेष रहे तब से लेकर मध्याह्न पर्यन्त जप करना श्रेष्ठ है। इसके उपरान्त जप करे तो कर्ता का नाश होता है यह सम्पूर्ण कार्यों से अनुष्ठान का क्रम है। नित्य नैमित्तिक तपश्चर्या का नियम नहीं है, अर्थात् प्रति दिन के अनुष्ठान में चाहे जब तक और जितनी इच्छा हो उतना जप करता रहे। उसमें कुछ दोष नहीं होता।

जपस्येहविधिं वक्ष्ये यथाकार्यं विधानतः ।
नाकुर्वन्नापिहसन् न पार्श्वमवलोकयन् ॥
नापाश्रितो न जल्पंश्च न प्रावृतशिरास्तथा ।
नपदा पादमाक्रम्य न चैव हि तथा करौ ॥
नैवं त्वविधि जपं कुर्यान्न च संश्रावयञ्जपेत् ।
तिष्ठंश्चेद्वीक्षमाणोऽर्कमासीनःप्राङ्मुखो जपेत् ॥

याज्ञवल्क्य ऋषि जप की विधि विधान में कहते हैं कि जप करने के समय न चले, न हिले, न हँसे, न इधर उधर देखे, न किसी वस्तु का तकिया लगावे, न किसी से बात करे, न सिर को ढाँके, और न पाँव से पाँव (पाद) को दबावे, वैसे ही हाथ से हाथ को न दबावे। इस ऊपर के कहे हुए प्रकार से जप न करे और जप के मन्त्र को दूसरा न सुन सके। यदि खड़े होकर जप करे तो सूर्य नारायण की ओर देखे और बैठ कर जप करे तो पूर्व की ओर मुख करके बैठे। और भी नियम इसी ग्रन्थ में ऐसा है कि सिर, ग्रीवा (गर्दन को न हिलावे, दाँतों को न प्रकाशित करे, गीले वस्त्र (आर्द्र) और एक वस्त्र पहने हुए व नीले वस्त्र और पुराने वस्त्र धारण किये हुए जप न करे।

मनोमध्येस्थितो मंत्रो मंत्रमध्येस्थितं मनः।
मनोमन्त्रसमायुक्तमेतद्धि जपलक्षणम् ॥

मन में मन्त्र और मन्त्र में मन रहे इस प्रकार मन और मन्त्र का एक साथ योग करके जप करना चाहिए अर्थात् चित्त एकाग्र करके जप करे।

स्नानेहोमेजपेदाने स्वाध्याये पितृकर्मणि।
करौ सदर्भौ कुर्वीत तथा सन्ध्याभिवादने ॥

यथा वज्रं सुरेन्द्रस्य यथा चक्रं हरेस्तथा।
त्रिशूलं च त्रिनेत्रस्य ब्राह्मणस्य पवित्रकम् ॥

कुशाः काशाः शरा दूर्वा यव गोधूमवल्वजाः।
सुवर्णं रजतं ताम्रं दशदर्भाः प्रकीर्त्तिताः ॥

स्नान, होम, जप, दान, स्वाध्याय, श्राद्ध आदि कर्मों में सन्ध्यावन्दन की तरह कुश धारण करना चाहिए। जैसे इन्द्र का आयुध वज्र है, विष्णु का चक्र है, महादेव का त्रिशूल है, जैसे ही ब्राह्मण का आयुध कुश है। कुश, काश, शर, दूब, यव, गोधूम बल्वज, सुवर्ण, चाँदी, ताँबा ये दस प्रकार के दर्भ हैं।

यह कुश पवित्र करता है इसको धारण करने से जल तीर्थ रूप में हो जाता है। उच्छिष्टादि का भेद नहीं रहता।

स्नाने दाने जपे होमे सन्ध्यायां देवतार्चने।
शिखाग्रन्थिं विना कर्म न कुर्याद्वै कदाचन॥
आसने शयने सङ्गे भोजने दन्त धावने।
शिखा मुक्तिं सदा कुर्यादित्येतन्मनुरब्रवीत्॥

स्नान, दान, जप, होम, सन्ध्या, देवार्चन कभी बिना चुटिया बाँधे न करे। सोते समय, सहवास भोजन दतौन आदि करते समय सदा चोटी खोल दे।

खल्वाटादिक दोषेण विशिचश्चेन्नरो भवेत्।
कौशीतदः धारयीत ब्रह्मग्रंथि युतां शिखाम्॥

खल्वाटमें कुश की शिखा बनाना। (संस्कार भास्करे)

स्नानागारं दिशि प्राच्यामाग्नेय्यामग्निमन्दिरम्।
अवाच्यां शयनागारं नैऋत्यां वस्त्रमन्दिरम्॥
प्रतीच्यां भोजनागारं वायव्यां पशुमन्दिरम्।
भाण्डकोशं तूत्तरस्यामैशान्यां देवमन्दिरम्॥
देवानां हि मुखं कार्यं पश्चिमायां सदा बुधैः॥

मकान में पूर्व दिशा की तरफ़ स्नानागार, अग्निकोण में अग्नि-मन्दिर, दक्षिण में शयनागार, नैऋत्यकोण में वस्त्रागार, पश्चिम में भोजनशाला, वायव्यकोण में पशुशाला, उत्तर में भण्डारघर, ईशान कोण में देवमन्दिर बनवावे। चतुर मनुष्य को देवता का मुख सदा पश्चिम में रखना चाहिए।

प्रातर्नाभौ करं कृत्वा मध्याह्ने हृदि संस्थितम्।
सायं जपति नासाग्रे जपस्तु त्रिविधः स्मृतः॥

धृत्वा पवित्रं संप्रोक्ष्य जपस्थानं कुशोदकैः ।
आधारादीन् नमस्कृत्य कुशाग्रैरासनं ततः ॥
बद्ध्वा पद्मासनं वापि स्वस्तिकं वा यथासुखम् ।
ॐ भूर्भुवः स्वरामोति जपित्वासनमुपविशेत् ॥
अप्रोक्षित जपस्थानाच्छक्रो हरति यज्जपम् ।
वस्त्रेणाच्छाद्य तु करं दक्षिणं यः सदा जपेत् ।
तस्य स्यात्सफलं जाप्यं तद्धीनमफलं स्मृतम् ॥
अतएव जपार्थं सा गोमुखी ध्रियते जनैः ॥

जप करते समय प्रातःकाल नाभि पर, मध्यान्ह में हृदय पर, सायंकाल नासाग्र पर हाथ रखना चाहिए। कुश की पवित्री धारण करके कुश के जल से जपस्थान को छिड़के। आधार देवों को नमस्कार करने के बाद कुशासन पर बैठे। पद्मासन अथवा स्वस्तिकासन लगाकर सुखपूर्वक बैठे। व्याहृति जप कर ही आसन पर बैठे। जपस्थान के अप्रोक्षित होने पर इन्द्र जप के फल को हर ले जाते हैं। जो दाहिने हाथ को ढककर जप करता है उसका जप सफल होता है और ऐसा न करने से सफलता नहीं मिलती। इसी कारण से चतुर लोग गोमुखी में जप करते हैं।

यस्य देशो न विज्ञातो नाम गोत्रं त्रिपूरुषं ।
कन्यादाने पितृश्राद्धे नमस्कारे च वर्जयेत् ॥
पाखण्डं पतितं व्रात्यं महापातकिनं शठम् ।
सोपानत्कं कृतघ्नं च नाभिवादेत्कदाचन ॥

देवताप्रतिमां दृष्ट्वा यतिं दृष्ट्वा त्रिदण्डिनम् ।
नमस्कारं न कुर्याच्चेत्प्रायश्चित्ती भवेद्द्विजः ॥
नमस्कारं विना विप्र आशीर्वादं प्रयच्छति ।
विप्रो भवति चाण्डालो गृह्णानो नरकं व्रजेत् ॥

समायां यज्ञशालायां देवतायतनेषु च ।
प्रत्येकं तु नमस्कारो हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥
यदि स्नातो भवेद्विप्रो मस्तकं तिलकं विना ।
नमस्कारं न कुर्यात्तमिति प्राहुर्मनीषिणः ॥

जिसके नाम, गोत्र और देश इन तीनों का पता न हो उसे कन्यादान तथा श्राद्धादि कर्मों के समय नमस्कार न करे। पाखण्डी, पतित, व्रात्य, महापातकी तथा शठ, शराबी, कृतघ्न को कभी नमस्कार न करे। देवप्रतिमा तथा त्रिदंडी सन्यासी को देखकर जो नमस्कार नहीं करता उस ब्राह्मण को प्रायश्चित्त लगता है। बिना नमस्कार पाये जो ब्राह्मण आशीर्वाद देता है वह चाण्डाल होकर नरक में पड़ता है। सभा, यज्ञशाला या देवमन्दिर में जो प्रत्येक जन को नमस्कार करता है वह कमाया पुण्य खो देता है। स्नान किये और बिना तिलक लगाए ब्राह्मण को नमस्कार न करे ऐसा विद्वानों का मत है।

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च सन्ध्या
वेदः शाखा धर्मकर्माभिपत्रे ।
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं
छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रे ॥
ॐकारप्रौढमूलः क्रमपदसहितश्छन्दविस्तीर्णशाखो ।
ऋक्पत्रः सामपुष्पो यजुरधिकफलोऽथर्वगन्धः दधानः ॥
यज्ञच्छायासमेतो द्विज मधुपगणैः सेव्यमानः प्रभाते ।
मध्ये साय त्रिकालं सुचरितचरितः पातु वो वेदवृक्षः ॥

विप्र रूपी वृक्ष की जड़ सन्ध्या है, शाखाएँ वेद हैं, धर्म कर्म ही उसके पत्ते हैं। इसलिए जड़ का नाश होने से शाखा और पत्ते आदि नहीं रह जाते। प्रणव ही जिसकी मजबूत जड़ है, क्रम पद (छन्दों के सहित वेद) जिसकी विशाल शाखाएँ है, ऋग्वेद जिसके पत्ते, साम-

वेद पुष्प, यजुर्वेद जिसका फल और अथर्ववेद जिसकी गन्ध है, यज्ञरूपी छाया से वेष्ठित जो प्रातः मध्यान्ह तथा सायं त्रिकाल समयों में द्विज-रूपी भ्रमरों से सेवित है वह वेदवृक्ष हमारा कल्याण करे।

सारभूतास्तु वेदानां गुह्योपनिषदो मताः।
ताभ्यः सारस्तु गायत्रीतिस्रो व्याहृतयस्तथा ॥

वेदों का सार गुह्य उपनिषद् हैं। गुह्य उपनिषदों का भी सार गायत्री तथा तीन व्याहृतियाँ हैं।

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥

यज्ञ, दान और तप कर्म त्यागने के योग्य नहीं हैं, वह निस्सन्देह करने के योग्य हैं। (क्योंकि) यज्ञ; दान और तप (ये तीनों) ही बुद्धिमान पुरुषों को पवित्र करने वाले हैं।

गीता अ० १८-श्लोक ५

ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण विधि

शुद्ध आसन पर बैठकर बायीं हथेली पर श्वेत मृत्तिका को जल में घिसकर मूल मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित कर निम्नलिखित मन्त्रों को बोलते हुए क्रमशः ललाट आदि स्थानों पर ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करे—

मन्त्र	स्थान	अंगुल प्रमाण
ॐ केशवाय नमः	ललाट	४
,, नारायणाय नमः	उदर	१०
,, माधवाय नमः	वक्षस्थल	८
,, गोविन्दाय नमः	कण्ठ	४
,, विष्णवे नमः	दक्षिण उदर	१०

ॐ मधुसूदनाय नमः	दक्षिण भुजा	८
,, त्रिविक्रमाय नमः	दक्षिण कण्ठ	४
,, वामनाय नमः	वाम उदर	१०
,, श्रीधराय नमः	वाम भुजा	८
,, हृषीकेशाय नमः	वाम कण्ठ	४
,, पद्मनाभाय नमः	पृष्ठ	४
,, दामोदराय नमः	पृष्ठ कण्ठ	४

शेष श्वेत मृत्तिका से द्वादशाक्षर मन्त्र बोलकर शिर में धारण करे। इसके बाद श्रीचूर्ण को घिसकर इन मन्त्रों द्वारा ऊर्ध्व पुण्ड्रों के क्रमानुसार श्री चूर्ण धारण करे—

ॐ श्रियै	नमः	१	ॐ वरारोहायै	नमः	७
,, अमृतोद्भवायै	नमः	२	,, हरिवल्लभायै	नमः	८
,, कमलायै	नमः	३	,, शार्ङ्गिण्यै	नमः	९
,, चन्द्रसोदर्यै	नमः	४	,, देवदेविकायै	नमः	१०
,, विष्णुपत्न्यै	नमः	५	,, लोकसुन्दर्यै	नमः	११
,, वैष्णव्यै	नमः	६	,, महालक्ष्म्यै	नमः	१२

ॐ सर्वाभीष्ट फलप्रदायै नमः

इसके पश्चात् तुलसी एवं कमल की माला तथा पवित्रमाला को धारण करे। दो अथवा चार कुशों द्वारा तैयार की हुई पवित्री को दाहिने हाथ की अनामिका अँगुली में धारण करे। और गुरुपरम्परा का अनुसन्धान करे।

ब्रह्मकर्म भगवदाराधनविधिः

विशेष- निम्नलिखित सन्ध्यावन्दन विधि श्री कांची प्रतिवादिभयङ्कर मठ के धर्म-प्रचार-विभाग द्वारा प्रकाशित हुई है। सन्ध्यावन्दन की अनेक पुस्तकें देखने के उपरान्त यही सर्वोत्तम तथा एक सर्वमान्य धर्माचार्य के तत्वावधान में छपने से उपयोगी प्रतीत होती है। अतः वह इस पुस्तक में छापी गई है।

सूचना

ब्राह्मणों के लिए गायत्री छन्द वाला सवितृ देवता का मन्त्र है, क्षत्रियों के लिए त्रिष्टुप् छन्द वाला सवितृ देवता का मन्त्र है और वैश्यों के लिए जगती छन्दवाला सवितृ देवता का मन्त्र है। ये मन्त्र उपदेश से प्राप्त करने योग्य हैं, अतएव यहाँ नहीं लिखे गए। ब्राह्मण लोग गायत्री मन्त्र से जो काम करते हैं, उन कामों को क्षत्रिय त्रिष्टुपूछन्द वाले मन्त्र से और वैश्य जगतीछन्दवाले मन्त्र से करें।

सन्ध्यावन्दन में मुख्य मुख्य क्रिया कलाप

(१) हाथों और पैरों का धोना, (२) शिखाबन्धन, (३) आचमन, (४) प्राणायाम, (५) सङ्कल्प, (६) प्रोक्षण, (७) अभिमन्त्रित जल का पीना, (८) आचमन, (९) प्रोक्षण, (१०) प्राणायाम, (११) अर्घ्यप्रदान, (१२) प्राणायाम, (१३) प्रायश्चित्तार्घ्य-प्रदान

(१४) परिषेचन (१५) आचमन; (१६) तर्पण, (१७) आचमन भगवदर्पण (१८) जपस्थानप्रोक्षण (१९) प्राणायाम, (२०) सङ्कल्प, (२१) सव्याहृतिगायत्रीजप, (२२) प्राणायाम, (२३) गायत्र्यावाहन, (२४) गायत्रीजप, (२५) प्राणायाम; (२६) सङ्कल्प, (२७) गायत्री, विसर्जन, (२८) उपस्थान, (२९) सन्ध्यादिनमस्कार, (३०) अभिवादन, (३१) दिङ्नमस्कार (३२) प्राणायाम, (३३) अभिवादन (३४) आचमन, (३५) जपस्थानप्रोक्षण, ये ही सन्ध्यावन्दनान्तर्गत मुख्य क्रियाकलाप हैं। जिस जिस क्रम से किए जाते हैं उसी क्रम से लिखे गए हैं। सन्ध्यावन्दन सीखने वालों को प्रथम इन क्रियाओं का क्रम याद कर लेना चाहिए।

१—हाथ पाँव धोना।

दोनों हाथों को मणिबन्ध अर्थात् मणिकस्थान पर्यन्त और दोनों पादों को जानुपर्यन्त शुद्ध जल से धोना चाहिए।

२—शिखाबन्धन

गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते हुए अथवा विना मन्त्र के ही चोटी को दोनों हाथों से दृढ़ बाँधना चाहिए। सन्ध्यावन्दन कर्म करने के समय शिखा खुली न रह जाय, इस वास्ते सन्ध्यावन्दन के आरम्भ में शिखाबन्धन किया जाता है।

३—आचमन

कुक्कुटासन से पूर्व वा उत्तर दिशामुख हो बैठे, बैठकर दक्षिण हाथ को गौ के कान के सदृश सङ्कुचित कर, उसमें उतना

जल ले जितने में एक उड़द अच्छी तरह डूब सके, उस जल को 'अच्युताय नमः' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए पी जावे, अनन्तर इसी प्रकार एक बार जल हाथ में ले उसको 'अनन्ताय नमः' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए पी जावे, पश्चात् पुनरपि एक बार उसी प्रकार जल ले उसको 'गोविन्दाय नमः' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए पी जावे। तीन बार जल पान करने के पश्चात् हाथ से मुख को पोंछ डाले।

अनन्तर दाहिने हाथ के अंगूठे के अग्रभाग से 'केशवाय नमः' इस मन्त्र को बोलते हुए ओठ के दाहिने भाग का मार्जन करते हुए दाहिने तालु तक तक स्पर्श करे 'नारायणाय नमः' इस मन्त्र को बोलते हुए उसी अंगूठे के अग्रभाग से ओठ के वाम भाग का मार्जन करते हुए तालु तक स्पर्श करे। दहिने हाथ का अंगूठा और अनामिका इन दोनों अंगुलिओं में जल लं उनसे 'माधवाय नमः' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए दहिने आंख का स्पर्श करे, और गोविन्दाय नमः इस मन्त्र को बोलते हुए उन्हीं अंगुलियों से वाम आंख का स्पर्श करे। अंगूठा और तर्जनी इन दोनों अंगुलियो में जल ले उनसे 'विष्णवे नमः इस मन्त्र से नाक का दाहिना भाग और 'मधुसूदनाय नमः इस मन्त्र से नाक के वाम भाग का स्पर्श करे। अंगूठा और कनिष्ठिका इंन दोनों अंगुलियों में जल ले उनसे 'त्रिविक्रमाय नमः' इस मन्त्र को बोलते हुए दाहिना कान और 'वामनाय

नमः' इस को बोलते हुए बाएं कान का स्पर्श करे। अंगुष्ठ और मध्यमा इन अंगुलिओं में जल ले उनसे 'श्रीधराय नमः' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए दहिने बाँह और 'हृषीकेशाय नमः इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए बाँये बाँह का स्पर्श करे। पांचों अंगुलियों में जल ले उनसे 'पद्मनाभाय नमः' इस मन्त्र से हृदय का स्पर्श करे, 'दामोदराय नमः' इस मन्त्र से मस्तक का स्पर्श करे। यही आचमन की विधि है। इस प्रकार दो बार आचमन करना चाहिए। सर्व मन्त्रों के आदि में प्रणव जोड़ देना उचित है।

आचमन करने के अनन्तर 'पुण्डरीकाक्षाय नमः' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए हृदय कमल में भगवान् पुण्डरीकाक्ष का ध्यान करे। पश्चात्

"अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोपिवा।
यःस्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥"

इस मन्त्र को बोलते हुए हाथ में जल ले मस्तक पर उससे प्रोक्षण करे।

४—प्राणायाम।

रेचक-पूरक-कुम्भक ये तीनों कर्म प्राणायामान्तर्गत हैं। प्रथम रेचक, पश्चात् पूरक, तत्पश्चात् कुम्भक, इस क्रम से ये कर्म किये जाते हैं।

शरीरान्तः स्थित वायु को बाहर निकालना रेचक कहलाता

है, वाहर के वायु को नासिका द्वार से भीतर खींचना पूरक कहलाता है, न तो भीतर के वायु को वाहर निकाले और न वाहर के वायु को भीतर ही खींचे—किन्तु पूरित कुम्भवत् रहै, यह कुम्भक अवस्था कहलाती है।

रेचक पूरक और कुम्भक के लिए कालअवधि क्लृप्त है। दाहिने हाथ की मध्यमा और अंगुष्ठ; इन दो अंगुलियों से शब्द करते हुए उन अंगुलियों को अपने जाँघ के चारों तरफ घुमावे, घुमाना न तो शीघ्र हो और न मन्द, किन्तु मध्यम हो, इस प्रकार घुमाने में जितना काल लगे उस काल का नाम मात्रा है। रेचक में सोलह मात्रा काल लगना चाहिए, अर्थात् एकदम जोर से भीतर के वायु को वाहर न निकाले किन्तु धीरे धीरे निकाले, जिसमें षोडश मात्रा काल लग जावे। फिर पूरक करे, पूरक के वास्ते ३२ वत्तीस मात्रा काल नियत है। एकदम ज़ोर से वाहर के वायु को न खींचकर मन्दगति से खींचे, जिसमें वत्तीस मात्रा काल लग जावे। तत्पश्चात् कुम्भक ६४ चौसठ मात्रा काल पर्यन्त करे, अर्थात् उतना काल न तो वाहर के वायु को भीतर ही खींचे, और न खींचे हुए वायु को वाहर ही छोड़े।

दक्षिण हस्त की कनिष्ठिका और अनामिका इन दो अंगुलियों से वाएँ नासिका छिद्र को दवाकर दाहिने नासिका छिद्र से भीतर के वायु को वाहर निकालना चाहिए। यही रेचक है।

पश्चात् अंगूठे को दाहिने नासिका छिद्र से दवाकर वाएँ

नासिका छिद्र से बाहर के वायु को मन्द गति से भीतर खींचना चाहिए। यही पूरक है।

अनन्तर कनिष्ठिका अनामिका और अंगुष्ठ इन तीनों अंगुलियों से दोनों नासिका छिद्रों को दबा ले और भीतर से वायु को बाहर न छोड़े। यही कुम्भक है।

कुम्भक के अनन्तर भीतर रुके हुए वायु को अत्यन्त धीमी चाल से बाहर निकाले। इसमें बहुत सावधानी चाहिए नहीं तो भीतर रुका हुआ वायु एकदम से बाहर निकल पड़ेगा।

प्राणायाम के समय हृदय में भगवानका ध्यान करना चाहिए, ध्यानरहित प्राणायाम की अपेक्षा ध्यान सहित प्राणायाम अत्यन्त उत्तम है।

प्राणायाम के समय सव्याहृति सप्रणव गायत्री का सशिरस्क तीन बार अनुसन्धान करना चाहिए। प्रथम सातों व्याहृतियों का अलग-अलग आदि में प्रणव लगाकर, अनुसन्धान करे, अनन्तर प्रणव पूर्वक गायत्री का, पश्चात् शिरस्क का अनुसन्धान करे। इस प्रकार व्याहृति गायत्री और शिरस्क का अनुसन्धान तीन बार करना चाहिए।

"ओं भूः, ओं भुवः, ओं सुवः, ओं महः, ओं जनः, ओं तपः, ओं सत्यम्, ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्, ओम् आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवस्सुवरोम्।"

यही व्याहृति सप्रणव सशिरस्क गायत्री का आकार है।

इसमें सावित्री गायत्री जोड़ी गई है, जिनको गायत्री का उपदेश प्राप्त नहीं है, उनको चाहिए कि जिस मन्त्र का उपदेश प्राप्त हो वे उसीका अनुसन्धान तीन बार करें।

मन्त्रशास्त्र में यह देखा गया है कि जिस मन्त्र का जप करना हो उसी मन्त्र से प्राणायाम करने की विधि हैं।

५—सङ्कल्प

दहिने जानु के ऊपर वाम हाथ को ऊर्ध्वमुख रखे, उसके ऊपर दक्षिण हाथ को अधोमुख करके रखे, अनन्तर तिथि, वार नक्षत्र आदि का उच्चारण कर पश्चात् सङ्कल्प करना चाहिए।

सङ्कल्प की विधि सम्प्रदाय भेद से भिन्न है, यहाँ पर सब प्रकार के सङ्कल्पों का लिखना अशक्य है, अतएव यहाँ पर श्री वैष्णवसम्प्रदायावलम्बियों के सङ्कल्प को लिखकर, अन्य सम्प्रदायावलम्बियों के सङ्कल्पों में जो भेद हैं, उनको सूचनामात्र कर देते हैं।

सङ्कल्प

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥
यस्य द्विरदवक्त्राद्याः पारिषद्याः परश्शतम् ।
विघ्नं विघ्नन्ति सततं विष्वक्सेनं तमाश्रये ॥
हरिः, ओं तत् श्री गोविन्द, गोविन्द, गोविन्द, अद्य

श्रीभगवतो महापुरुषस्य श्रीविष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य आद्यब्राह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वत-मन्वन्तरे कलियुगे प्रथमपादे, जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे शकाब्दे मेरोर्दक्षिणपार्श्वे अस्मिन् वर्तमाने व्यवहारिके प्रभवादिषष्टिसंवत्सराणां मध्ये (१) संवत्सरे (२) अयने (३) ऋतौ (४) मासे (५) पक्षे (६) शुभतिथौ (७) वासर युक्तायां (८) नक्षत्रयुक्तायां श्रीविष्णुयोग श्री विष्णुकरण शुभयोग शुभकरण इत्येवङ्गुण विशेषणविशिष्टायां अस्यां (६) शुभतिथौ श्रीभगवदाज्ञया भगवत्कैङ्कर्यरूपं (१०) प्रातस्सन्ध्यावन्दनमहं करिष्ये ।

ऊपर के सङ्कल्प में जहाँ पर (१) लगा है वहाँ सङ्कल्प करने के समय में जो संवत्सर चलता हो उसका नाम बोलना चाहिए। इसी प्रकार सङ्कल्प करने के समय में जो अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र हो क्रम से उनको ऊपर के संकल्प में जहाँ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ नंबर लगे हैं वहाँ पर बोल लेना चाहिए; अर्थात् २ के स्थान में अयन, ३ के स्थान में ऋतु, ४ के स्थान में मास, ५ के स्थान में पक्ष, ६ के स्थान में तिथि, ७ के स्थान में वार और ८ के स्थान में नक्षत्र बोलना चाहिए।

यथा मान लीजिए कि सन्ध्यावन्दन के सङ्कल्प के समय आज कीलक सवत्सर उत्तरायण में वसन्त ऋतु में वैशाख शुक्ल

पक्ष की पूर्णिमा है और शुक्रवार तथा श्रवण नक्षत्र है। तब इसको ऊपर के सङ्कल्प में (१) के स्थान में 'कीलक' पद जोड़ कर 'कीलकसंवत्सरे' ऐसा बोलना पड़ेगा और इसी प्रकार अयन और ऋतु आदि के नाम भी जोड़ कर "कीलकसंवत्सरे उत्तरायणे वसन्तर्तौ वैसाखमासे शुक्लपक्षे पूर्णिमायाँ शुभतिथौ भृगुवासरयुक्तायां श्रीविष्णुयोग श्रीविष्णुकरण शुभयोग शुभकरण इत्येवंगुणविशेषण विशिष्टायामस्यां पूर्णिमायां शुभतिथौ" इस प्रकार ऊपर के सङ्कल्प की कल्पना करनी चाहिए।

ऊपर के सङ्कल्प में जहाँ "(९) संख्या लगी है वहाँ द्वारा तिथि ही बोली जाती है। जहां पर संख्या (१०) लगी है वहां पर 'श्रीमन्नारायणप्रीत्यर्थं' यह पद श्रीवैष्णवैकदेशिकपक्ष में अधिक बोला जाता है।

ऊपर के सङ्कल्प में देश का विवरण नहीं है, कोई उसको भी मिला लेते हैं। यथा—"विन्ध्योत्तरभागे गोदावरीदक्षिणतीरे घूर्जरदेशे पञ्चवटीक्षेत्रे" इत्यादि। जहां पर नारायणप्रीत्यर्थं बोला जाता है वहां शैवलोग 'महादेवप्रीत्यर्थं' बोलते हैं। स्मार्तसन्ध्यावन्दन में "उपात्त दुरितक्षयार्थं इष्टदेवताप्रीत्यर्थं" ये पद अन्त में जोड़े जाते हैं। सङ्कल्प के आरम्भ में "यस्य द्विरदवक्त्राद्याः" इत्यादि श्लोक बोला नहीं जाता। सङ्कल्प के अन्त में "भगवत्कैङ्कर्यरूप" यह पद भी श्रीवैष्णवों को छोड़ इतर पुरुष नहीं बोलते।

यद्यपि ऊपर तिथि वार नक्षत्र आदि मिलाकर सन्ध्यावन्दन

का सङ्कल्प लिखा गया है तथापि अब शिष्टलोग प्रतिदिन ऐसा सङ्कल्प नहीं बोलते हैं, केवल 'श्रीभगवदाज्ञया भगवत्कैङ्कर्यरूपं प्रातस्सन्ध्यावन्दनं करिष्ये।" इतना ही बोलते हैं। कोई विशेष कर्म करना हो तब ऐसा सङ्कल्प करते हैं।

६–प्रोक्षण।

(१) "आपोहिष्ठामयोभुवः, (२) तान ऊर्जे दधातन, (३) महेरणाय चक्षसे, (४) यो वश्शिव-तमो रसः, (५) तस्य भाजयतेह नः, (६) उशतीरिव मातरः, (७) तस्मा अरङ्गमामवः, (८) यस्य क्षयाय जिन्वथ. (९) आपो जनयथा च नः"।

(१) हे जल तुम ही निश्चय कर के वर्तमान हो और सुख देने वाले हो। (२) वह हमको अन्नादि को देवे जिस से बल हो और ईश्वर की चिन्ता करें। (३) परमात्मा चैतन्य रूप के दर्शन के लिये। (४) जो तुम्हारा ब्रह्म ज्ञान देनेवाला वा जीव-नादि वा स्वर्गादि सुख देनेवाला रस है। (५) उस (रस) का भागी निश्चय करके हमको करो अर्थात् वह अपना शिवतम रस हम को दो। (६) चाहनेवाली वा कोमल स्वभाव वाली जैसे माता होती है अर्थात् जिस प्रीति से माता पालन करती है उसी प्रकार से हमारी पालना करो। (७) उसकी तृप्ति को पहुँचाओ जो तुम्हारा रस है अर्थात् हे जल तुम हमको अपने रस से तृप्त करो। (८) जिसके निवास के लिये तृप्ति करो अर्थात् पंचाहुति

के लिये एक देश में तृप्ति करो (मनुः अ० ३ श्लोक ७६) १ जल २ मेघ ३ अन्न ४ बीज ५ प्रजा यह पंचाहुतिः का क्रम है। (६) हे जल हमको ब्रह्म सुख भोग कराओ। अर्थात् हे जल ब्रह्म ज्ञान का सुख हमको होवे वा हे जल अपने निवास से हमसे प्रजा वा पुत्र उत्पन्न कराओ।

इन मन्त्रों से (१) से (७) तक के मन्त्रों से प्रत्येक एक एक वार मस्तक पर जल से प्रोक्षण करना चाहिए। (८) वें मन्त्र से हाथ में जल लेकर भूमि में नीचे प्रोक्षण करना चाहिए। आठवें मन्त्र में भूमि के बदले अपने शरीर के निचले भाग अर्थात् पादादि में प्रोक्षण करना ही शास्त्रसम्मत है। यहाँ इतना और जान लेना चाहिए कि जिस क्षत्रियवैश्यादि-वर्ण को इन मन्त्रों का उपदेश प्राप्त नहीं हैं, वह उपदिष्ट मन्त्र ही से प्रोक्षण करे। वह यदि श्रीवैष्णवसम्प्रदायावलम्बी हो तो मूलमन्त्र ही से प्रोक्षण कर ले सकता है। प्रोक्षण के अनन्तर "ओंभूर्भुवःसुवः" इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए अपने शरीर के चारों तरफ जल फेरना चाहिए।

अभिमन्त्रित जल पान।

"सूर्यश्च मामन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः, पापेभ्यो रक्षन्ताम्, यद्रात्र्या पापमकार्षम् मनसा वाचा हस्ताभ्याम्, पद्भ्यामुदरेण शिश्ना, रात्रिस्तदवलुम्पतु, यत्किञ्चिद्दुरितं मयि, इदमहं माममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि

जुहोमि स्वाहा" इस मन्त्र से दहने हाथ में जल ले और उसे अभिमन्त्रित करके पीना चाहिए। अर्थात् प्रथम हाथ में जल ले मन्त्र पढ़े और तदनन्तर उस जल का पान करे।

ऊपर जो मन्त्र लिखा गया है, वह प्रातःकाल के सन्ध्या वन्दन के लिए है, माध्याह्निक और सायङ्कालिक सन्ध्यावन्दनों में जलाभिमन्त्रण के लिए अन्यान्य मन्त्र हैं।

आपः पुनन्तु पृथ्वी पृथ्वी पूता पुनातु माम्, पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्म पूता पुनातु माम्, यदुच्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम, सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहँ स्वाहा" यह माध्याह्निक सन्ध्या में जलाभिमन्त्रण करने का मन्त्र है।

"अग्निश्च मामन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः, पापेभ्यो रक्षन्ताम्, यदन्हा पापमकार्षम्, मनसा वाचा हस्ताभ्याम्, पद्भयामुदरेण शिश्ना, अहस्तदवलुम्पतु, यत्किञ्चिद्दुरितं मयि, इदमहं माममृतयानौ, सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा।" यह सायङ्काल की सन्ध्या में जलाभिमन्त्रण करने का मन्त्र है।

यहाँ पर यह समझ रखना चाहिए कि जिस क्षत्रिय वा वैश्य को यह मन्त्र प्राप्त नहीं है, वह उपदिष्ट मन्त्र का उच्चारण करके जलाभिमन्त्रण कर सकता है। श्रीवैष्णवसम्प्रदायावलम्बी मूलमन्त्र ही से जलाभिमन्त्रण कर सकते हैं।

८—आचमन

आचमनविधि पहले लिखी गई है, उसी प्रकार अभिमन्त्रित जलपानान्तर एक बार आचमन करना चाहिए।

९—प्रोक्षण।

(१) "दधिक्राव्णो अकारिषम्, जिष्णो रश्वस्य वाजिनः (२) सुरभिणो मुखाकरत्प्रण आयूंषि तारिषत्, (३) आपोहिष्ठा मयोभुवः, (४) तान ऊर्जे दधातन, (५) महेरणाय चक्षसे, (६) यो वश्शिवतमो रसः, (७) तस्य भाजयतेह नः, (८) उशतीरिव मातरः, (९) तस्मा अरङ्ग मामवः, (१०) यस्य क्षयाय जिन्वथ, (११) आपोजनयथा च नः" इन मन्त्रों से मस्तक पर जल का प्रोक्षण पूर्ववत् करना चाहिए। परन्तु "यस्य क्षयाय जिन्वथ" इस मन्त्र से मस्तक पर नहीं, किन्तु शरीर के निचले भाग में प्रोक्षण करना चाहिए।

स्मार्त ब्राह्मणों में एकदेशी ऊपर उक्त मन्त्र के सिवाय निम्न-मन्त्रों से भी प्रोक्षण करते हैं।

"हिरण्यवर्णाश्शुचयः पावका यासु जातः कश्यपो यास्विन्द्रः, अग्निं या गर्भं दधिरे विरूपास्तान आपश्शं स्योना भवन्तु।" (१)

"यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् । मधुश्चुतश्शुचयो या पावकास्तान आपश्शँ स्योना भवन्तु ।" (२)

"यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति । याः पृथिवीं पयसोदन्ति शुक्रास्तान आपश्शँ स्योना भवन्तु ।"

"शिवेन मा चक्षुसा पश्यतापश्शिवया तनुवोपस्पृशत त्वचं मे । सर्वां अग्नीं रप्सुषदो हुवे वो मयि वर्चो बलमोजो निधत्त ।" (४)

ये ही मन्त्र अधिक हैं ।

कात्यायनीयैकदेशी ऊपर प्रदर्शित मन्त्रों के बदले निम्नलिखित मन्त्रों से प्रोक्षण करते हैं ।

"ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोध्यजायत, ततो रात्र्यजायत ततस्समुद्रो अर्णवः समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत, अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्यमिषतो वशी, सूर्याचन्द्रमसौधाता यथापूर्वमकल्पयत्, दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः, यत्पृथिव्यां रजस्वमान्तरिक्षे विरोदसी, इमाँस्तदापो वरुणः पुनात्वघमर्षणः ।"

"द्रुपदादिव मुंचतु द्रुपदा दिवेन्मुमुचानः । स्विन्नस्नात्वी मलादिव । पूतं पवित्रेणेवाज्यम् । आपश्शुन्धन्तु मैनसः ।।"

ये ही दो वे मन्त्र हैं।

जिनको ये सब मन्त्र उपदिष्ट नहीं हैं, वे उपदिष्ट ही से प्रोक्षण कर लें। श्री वैष्णव मूलमन्त्र से प्रोक्षण करें।

आपस्तम्बीयैकदेशी प्रोक्षण के अनन्तर पापविमोचन नामक एक और कर्म करते हैं। हाथ में जल ले उसमें ऊपर लिखित "द्रुपदादिव" इत्यादि मन्त्रोच्चारण पूर्वक अपना निश्वास छोड़ कर उस जल को वाम भाग में छोड़ देते हैं, पीछे उस जल को देखते नहीं। यह पापविमोचन है कात्यायनीय इस कर्म को (७) प्रोक्षण के पूर्व ही करते हैं। वे लोग सुमित्र्या न आप ओषधयस्सन्तु" इस मन्त्र से हाथ में जल लेकर उसको दुर्मित्र्यास्तस्मै भूयासुर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः" इस मन्त्र से वाम भाग में छोड़ते हैं। इस कर्म को दाक्षिणात्य सभी नहीं करते।

१०—प्राणायाम

प्राणायाम की विधि पहले लिखी गई है, उसी विधि से प्राणायाम करना चाहिए।

प्राणायामानन्तर स्मार्त लोग अर्घ्यप्रदान का सङ्कल्प करते हैं। वह सङ्कल्प इस प्रकार का होता है—पूर्वोक्तैवंगुणविशेषण विशिष्टायामस्यां—

"शुभतिथौ ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा परमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातस्सन्ध्याङ्गमर्घ्यत्रय प्रदानं करिष्ये।" ऊपर के सङ्कल्प में जहाँ पर

खाली जगह छोड़ी गई है वहाँ पर उस तिथि को बोलना चाहिए. सन्ध्यावन्दन के समय में जो तिथि हो। 'प्रातस्सन्ध्याङ्ग, इसके बदले मध्याह्न सन्ध्या में 'माध्याह्निक सन्ध्याङ्ग, बोलना चाहिए, सायंसन्ध्या में 'सायंसन्ध्याङ्गम्' बोलना चाहिए। श्रीवैष्णवों को अर्घ्यप्रदान के लिए अलग सङ्कल्प करने की आवश्यकता नहीं है।

११—अर्घ्यप्रदान

प्रातःकाल की सन्ध्या में पूर्वाभिमुख हो, दोनों हाथों को मिलाकर उसमें जल भर ले, और शरीर के ऊपर के भाग को थोड़ा नवा कर गायत्री मन्त्र का पाठ करते हुए, सूर्य भगवान् को देखकर, हाथ के जल को कुछ ऊपर उठाकर छोड़ दे। यही अर्घ्यदान है। इस प्रकार तीन बार अर्घ्य देना चाहिए। सायङ्काल की सन्ध्या में भी तीन ही बार अर्घ्य दिया जाता है। केवल माध्याह्निक सन्ध्या में दो बार अर्घ्य दिया जाता है। उसमें भी स्मार्त लोग तीन बार ही अर्घ्य देते हैं।

स्मार्तों में कोई कोई माध्यान्हिक सन्ध्या में

हँसं श्शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिष दितिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥"

इस मन्त्र के साथ गायत्री का पाठ कर एक अर्घ्य देते हैं, बाकी दो अर्घ्यों को केवल गायत्री मंत्र से देते हैं।

माध्यान्हिक संध्या में एक ही अर्घ्य देने वाले भी हैं। श्रीवैष्णवों में दो और एक अर्घ्य देने वाले हैं। ये सब पक्षभेद विधायक स्मृतिवचनों के नाना रूप होने से हुए हैं।

१२—प्राणायाम।

प्राणायामविधि पूर्व कही गई है। उसीके अनुसार करना चाहिए।

१३—प्रायश्चित्तार्घ्यदान।

पूर्व कथित अर्घ्य प्रदान की रीति से ही एक अर्घ्य पुनरपि देना चाहिए। यह कालातिक्रम प्रायश्चित्त रूप है। संध्याकाल का ठीक निश्चय करना और उसीमें अर्घ्यप्रदान करना अस्मदादिक को दुःसाध्य है, अतएव तीनों संध्यावंदनों में प्रायश्चित्तार्घ्य दिया जाता है।

स्मार्तो में कोई कोई इस अर्घ्य में गायत्री के साथ सप्तव्याहृति और गायत्री शिरस्क को जोड़ते हैं।

१४—परिषेचन।

अर्घ्यप्रदानानन्तर हाथ में जल लेकर शरीर के चारों ओर घुमाकर धारारूप में उस जल को छोड़ना चाहिए, जिससे कि चारों ओर मण्डलाकार एक जल की धारा भूमि में पतित हो। परिषेचन के समय प्रणव और तीन व्याहृतिओं का उच्चारण करना चाहिए, अर्थात् "ओंभूर्भुवःस्वः" इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए।

परिषेचन के अनन्तर आत्मप्रदक्षिण करना पड़ता है, अर्थात् जहाँ पर खड़ा हो वहाँ ही एक बार खड़े खड़े घूम जाना चाहिए, जिसमें एक प्रदक्षिणा पाँवतले की भूमि की हो जाय। इस समय "असावादित्योब्रह्म" इसका उच्चारण करते हुए सूर्य-मण्डलमध्यवर्ती भगवान् और निजान्तर्हृदय में अन्तर्यामिरूपेण अवस्थित भगवान् इनमें ऐक्यानुसंधान मन में करना चाहिए। इस प्रदक्षिणा से उस पाप का नाश होता है, जो कि अर्घ्यप्रदान द्वारा मंदेहनामक असुरों की हत्या से हुआ है। यदि अर्घ्यप्रदान जल में खड़े रह कर किया गया हो तो जल से बाहर निकल कर आत्मप्रदक्षिण करना चाहिए।

१५—आचमन।

आचमन की विधि पहले लिखी गई है, उसी विधि से आत्मप्रदक्षिण के अनन्तर भूमि पर बैठ कर, एक बार आचमन करना चाहिए।

१६—तर्पण।

श्रीवैष्णवों में केशवादि द्वादश नामों से तर्पण प्रचलित है, स्मार्तों में सूर्यादि नवग्रह तर्पण प्रचलित है, उनमें किसी किसी के मत में केशवादितर्पण ही होता है। "केशवं तर्पयामि, नारायणं तर्पयामि, माधवं तर्पयामि, गोविन्दं तर्पयामि, विष्णुं तर्पयामि, मधुसूदनं तर्पयामि, त्रिविक्रमं तर्पयामि,

वामनं तर्पयामि, श्रीधरं तर्पयामि, हृषीकेशं तर्पयामि, पद्मनाभं तर्पयामि, दामोदरं तर्पयामि" इन मन्त्रों का उच्चारण करते हुए तर्पण करना चाहिए। नवग्रह तर्पण करने वाले 'सूर्यं तर्पयामि' शनिं तर्पयामि' इत्यादि क्रम से तर्पण करें।

१७—आचमन।

तर्पणानन्तर पूर्वोक्त विधि से दो बार आचमन करना चाहिए। इसके पश्चात् दोनों हाथों को संयुक्त कर और उसमें जल भर कर "श्रीभगवत्समाराधनम्" इस वाक्य का उच्चारण करते हुए उस जल को छोड़ दे। यही भगवेदर्पण है। अर्थात् सन्ध्यावन्दन की जो क्रिया की गई है उसमें भगवदाराधनत्व बुद्धिपूर्वक भगवान् को उस कर्म को अर्पण करना ही भगवदर्पण कहलाता है।

यह कार्य अवश्य कर्तव्य है, क्योंकि भगवान् ने श्रीगीता के

"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥"

अनुसार ही इस श्लोक में समस्त कर्मों को भगवदर्पण करने का उपदेश किया है।

१८—जपस्थानप्रोक्षण

भगवदर्पण करने के अनन्तर जिस स्थान पर बैठ कर वा खड़े होकर जप करना हो उस स्थान का जल से प्रोक्षण करना चाहिए। (आचमन करने के बाद

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिमाश्रिताः ।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते गच्छन्त्वाज्ञा हरेः ॥

कह कर भूतशुद्धि करे ।)

'ओं भूर्भुवः स्वः' इसका उच्चारण करते हुए जल से प्रोक्षण करना चाहिए ।

'पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ।
त्वं च धारय मां देवि, पवित्रं कुरु चासनम् ॥

इस श्लोक से पृथ्वी की प्रार्थना कर, आसन देवताओं की मानसिकाराधनपूर्वक प्रार्थना करनी चाहिए ।

१६—प्राणायाम

प्राणायाम की विधि पहले लिखी गई है उसी क्रम से आसन पर बैठकर तीन प्राणायाम करना चाहिए ।

२०—संकल्प

सङ्कल्प करने के समय हस्तक्रिया आदि जैसे करना चाहिए, वह पहले लिखी जा चुकी है । सङ्कल्प में देशकालादिसङ्कीर्तन करे वा न करे ।

श्री भगवदाज्ञया भगवत्कैङ्कर्यरूपं प्रातस्सन्ध्या मन्त्र-जपं करिष्ये" इस वाक्य से सङ्कल्प करे । सङ्कल्प में जो कुछ भेद है(वह पहिले लिखा जा चुका है, जो जिस मत का हो वह उसके अनुसार सङ्कल्प कर सकता है ।

२१—सप्तव्याहृतिगायत्रीजप

जप के पूर्व न्यास करना चाहिए । गायत्री का ऋषि विश्वा-

मित्र, छन्द देवी गायत्री, देवता परमात्मा सविता श्रीमन्नारायण है। ऋषि का न्यास मस्तक पर, छन्द का न्यास मुख पर, देवता का न्यास हृदय पर करना चाहिए। 'अस्य श्रीगायत्रीमहामंत्रस्य विश्वामित्र ऋषिः, देवी गायत्री छन्दः परमात्मा सविता श्रीमन्नारायणो देवता' इस प्रकार उच्चारण करते हुए वक्षस्थल में न्यास करना चाहिए। पश्चात् हृदयकमल में भगवान् का ध्यान कर आराधन करना चाहिए। तदनन्तर दस बार सप्त व्याहृति संयुक्त गायत्री का अनुसन्धान करना चाहिए। प्राणायाम में गायत्रीमन्त्र जैसा बोला जाता है वैसा ही दस बार अनुसन्धान करना चाहिए।

२२—प्राणायाम

इसकी विधि पहले लिखी गई है, उसी के अनुसार करना चाहिए।

२३—गायत्र्यावाहन

पश्चात् हाथ जोड़ कर, "आयातु वरदा देवि अक्षरं ब्रह्मसम्मितम् । गायत्रीं छन्दसां माता इदं ब्रह्म जुषस्व नः। इस मन्त्र से गायत्री का आवाहन करना चाहिए। इस मन्त्र के अनन्तर 'ओजोसि, सहोसि, बलमसि, भ्राजोसि देवानां धामनामासि, विश्वमसि विश्वायुस्सर्वमसि सर्वायुः अभिभूरों गायत्रीमावाहयामि' इसका भी उच्चारण करना चाहिए। इस मन्त्र में "ब्रह्मसम्मितम्" इसके स्थान पर "ब्रह्मसंहितम्" ऐसा भी पाठ भेद है। "आयातु वरदे देवि अक्षरं ब्रह्मवादिनी ।

गायत्रींछन्दसां माता ब्रह्मयोने नमोस्तु ते ॥"
इस मन्त्र का भी कहीं विधान है, परन्तु पूर्वोक्त मन्त्र ही अब आचारसिद्ध है। सूर्यमण्डल मध्य में गायत्री देवता का ध्यान कर वहाँ से आवाहन करना चाहिए।

अनन्तर गायत्र्यर्थभूत परमात्मा का ध्यान करना चाहिए। प्रथम ज्वाला माला सहस्र युक्त सूर्यमण्डल का ध्यान कर, तन्मध्य में भगवत ध्यान करना चाहिए। रक्तकमल की कर्णिका में सुखासीन, स्वर्णच्छाय, तोते के मुख के समान कान्ति जिसकी ऐसे पट्टवस्त्र से अलंकृत, शङ्खचक्रगदाधारी, रक्तनेत्र, रक्तहस्तपादवान्, नानाविधि अनर्घ रत्नाभरणों से भूषित, भगवान का ध्यान करना चाहिए। अनन्तर हृदयकमल में भी उसी भगवान् का ध्यान कर नानाविधोपचारों से मानसिक पूजा करनी चाहिए। तत्पश्चात् गायत्री के अर्थ का अनुसन्धान करते हुए जप करना चाहिए।

२४—गायत्री जप

'ओं भूर्भुवः स्वः' को गायत्री के आदि में लगाकर जप करना चाहिए। १०००८,१०८,२८ इन संख्याओं में जितना बन सके उतना जप करना चाहिए। मानसिक, उपांशु, उच्चैः इन तीन प्रकार के जपों में मानसिक जप ही उत्तम है। वह नहीं हो सके तो उपांशु जप करना उचित है। उपांशु जप में अधरादिचलन होता है, परन्तु दूसरा आदमी सुन नहीं सकता।

२५—प्राणायाम

जप की संख्या पूरी हो जाने के बाद पूर्वोक्त रीति से तीन बार प्राणायाम करना चाहिए।

२६—सङ्कल्प

अनन्तर उपस्थान का सङ्कल्प करना चाहिए। सङ्कल्प में देश काल आदि का जप करे वा न करे। "श्रीभगवदाज्ञया भगवत्कैङ्कर्यरूप प्रातस्सन्ध्योपस्थानं करिष्ये" इस प्रकार सङ्कल्प प्रातःकाल की सन्ध्या में करना चाहिए। माध्यान्हिक और सायङ्काल की सन्ध्या में "माध्यांन्हिकोपस्थानं" और "सायंसन्ध्योपस्थानं" बोलना चाहिए। सङ्कल्प में जो मतभेद है, वह पूर्वोक्ति रीति से जानना चाहिए।

२७–गायत्रीविसर्जन।

सङ्कल्पानन्तर "उत्तमे शिखरे देवि भूम्यां पर्वतमूर्धनि ब्राह्मणेभ्यो ह्यनुज्ञानं गच्छदेवि यथासुखम्" इस मन्त्र से गायत्री का उद्वासन करना चाहिए।

२८–उपस्थान।

इसके पश्चात उपस्थान किया जाता है। सूर्याभिमुख हो ऋजुकाय खड़े होकर, सूर्य भगवान का दर्शन करते हुए अञ्जलिहस्त होकर उपस्थान करना चाहिए।

प्रातःकाल के उपस्थान में—

मित्रस्य चर्षणीधृतश्श्रवो देवस्य सानसिम् सत्यंचित्र·

श्रवस्तमम्, मित्रो जनान्यातयति प्रजानन्मित्रो दाधार पृथिवी मुतद्याम्, मित्रः कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे सत्याय हव्यं घृतवद्विधेम, प्रसमित्रमर्तो अस्तु प्रयस्वान्यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन, न हन्यते न जीयते त्वोतोनैनमँहो अश्नोत्यन्ततो न दूरात् !"

इस मन्त्र का उच्चारण करना पड़ता है। इसके पश्चात् सन्ध्यादिनमस्कार है।

सायङ्काल के उपस्थान में—

"इमं मे वरुण श्रुधीहवमद्याचमृडय त्वामवस्युराचके तत्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्तेयजमानोविर्भिः, अहेडमानो वरुणेह बोध्यु रुशँसमान आयुः प्रमोषीः, यश्चिद्धिते विशो यथा प्रदेव वरुण व्रतम्, मिनीमसि द्यविद्यवि, यत्किञ्चेदं वरुण दैव्ये जनेभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि, अचित्तीयत्तव धर्मायुयोपिम मा नस्तस्मा देनसो देव रीरिष, कितवासो यद्रि रिपुर्न दिवि यद्वाघासत्यमुत यन्नविद्म सर्वा-ताविष्य शिथिरेव देवाथाते स्याम वरुण प्रियासः"

इस मन्त्र का उच्चारण होता है। इसके बाद ही सन्ध्यादि नमस्कार है।

माध्याह्निक के उपस्थान में कुछ विशेष है। गायत्री का विसर्जन करने के अनन्तर "आसत्येन रजसा वर्तमानो

निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च हिरण्ययेन सविता रथेनादेवो याति भुवना विपश्यन्, उद्वयं तमसस्परि पश्यन्तो ज्योतिरुत्तमम्, उदुत्यं जातवेदसन्देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम्, चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः, आ प्राद्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च, तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।"

यहाँ तक मन्त्र का उच्चारण खड़े हो और हाथ जोड़े हुए करना पड़ता है। इसके बाद सूर्य भगवान् का दर्शन करे। खड़े होकर दोनों हाथ मिलाकर एक ऐसी मुद्रा बनावे जिसके बीचों बीच एक छिद्र बन जाय, (*) अनन्तर उस छिद्र में सूर्य भगवान् का दर्शन करते हुए

"पश्येम शरदश्शतम्, जीवेम शरदश्शतम्,
नन्दाम शरदश्शतम्, मोदाम शरदश्शतम्,
भवाम शरदश्शतम्, शृणवाम शरदश्शतम्,
प्रब्रवाम शरदश्शतम्,अजीतास्स्याम शरदश्शतम्,
ज्योक्च सूर्यं दृशे ।"

इन मन्त्रों का पाठ करे। इसके बाद प्रथम जहाँ पर खड़े हो कर उपस्थान शुरू किया होय वहाँ जा कर खड़ा हो जावे, और—

---

*इसकी क्रिया को किसी के द्वारा सीख लेना चाहिए।

"य उद्गान्महतोर्णवाद्विजमानस्सरिरस्य मध्यात्स-माद्वृषभो लोहिताक्षस्सूर्यो विपश्चिन्मनसा पुनातु ।"
इसका पाठ करे । अन्य उपस्थानों की अपेक्षा इस उपस्थान में यही विशेष है ।

२६—सन्ध्यादि नमस्कार

उपस्थानमन्त्रपाठानन्तर हाथ जोड़ कर "सन्ध्यायै नमः" इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए पूर्वदिशाभिमुख हो प्रातःकाल की सन्ध्या में सन्ध्या देवता को नमस्कार करना चाहिए । दक्षिणदिशाभिमुख होकर सावित्र्यै नमः" इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए सावित्री देवता को नमस्कार करना चाहिए । पश्चिमाभिमुख होकर "गायत्र्यै नमः" इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए पूर्ववत गायत्री को नमस्कार करना चाहिए । पश्चात् उत्तराभिमुख होकर "सरस्वत्यै नमः" इस मन्त्र से सरस्वती को नमस्कार करना चाहिए । अनन्तर पूर्ववत् पूर्वाभिमुख होकर "सर्वाभ्यो देवताभ्यो नमः" इस मन्त्र से सब देवताओं को नमस्कार करना चाहिए । तत्पश्चात् कामोकार्षीन्मन्युरकार्षीन्नमो नमः" इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ।

माध्यान्हिक सन्ध्या में भी इसी प्रकार पूर्वादि क्रम से सन्ध्यादि नमस्कार किया जाता है । सायंकाल की सन्ध्या में प्रथम पूर्व दिशा के बदले में पश्चिम दिशा मुख होकर "सन्ध्यायै नमः" इस मन्त्र से देवता का नमस्कार करना

पड़ता है। फिर क्रम से उत्तर पूर्व और दक्षिण दिशामुख हो कर उन उन मन्त्रों से सावित्री आदि को नमस्कार करना पड़ता हैं। आखिर में पश्चिम दिशा को मुख कर सर्व देवता नमस्कार आदि करना पड़ता है। यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि सायङ्काल की सन्ध्या में उपस्थान भी पश्चिमाभिमुख हो कर ही करना पड़ता है।

३०—अभिवादन।

अपने शरीर को कुछ आगे की तरफ झुकाले और माथे को नवाले। इस प्रकार शरीर को बनाकर अपने दोनों हाथों से दोनों कानों का इस प्रकार स्पर्श करे कि हथेलियों से दोनों कान ढक जाँय, पश्चात् "अभिवादये" शब्द बोल कर, अपने प्रवर गोत्र सूत्र शाखा नाम बोले, अनन्तर "अहमस्मि भोः" ऐसा बोल कर, अपने दोनों हाथों को अदलाबदली से एक के ऊपर दूसरा रख कर सामने की ओर झुका कर लंबा करे, जैसे कि सामने कोई आदमी खड़ा हो और एक दूसरा आदमी उसके सामने खड़ा होकर अपने दहने हाथ से सामने वाले आदमी का दहना पाद और बाँयें से बायें पाद को पकड़ता हो।

मान लो कि 'आंगिरस बार्हस्पत्य भारद्वाज' किसी का प्रवर है, वह भरद्वाजगोत्री है, आपस्तम्बसूत्री है, यजुश्शाखी हैं, रामचन्द्र उसका नाम है तो वह इस प्रकार अभिवादन करेगा

"अभिवादये आंगिरस बार्हस्पत्य भारद्वाज त्र्यार्षेयप्रव-

रान्वितः भरद्वाजगोत्रः आपस्तम्बसूत्रः यजुश्शाखाध्यायी रामचन्द्रशर्मा नामाहमस्मिभोः"

इसी प्रकार अन्यान्य प्रवर गोत्र सूत्र शाखा नाम वाले अपने अपने प्रवर आदि बोल लेने चाहिए। यह ब्राह्मण की विधि है। क्षत्रिय वा वैश्य हो तो उनका भी अभिवादन प्रकार ऐसा ही है, परन्तु 'शर्मा' के स्थान में 'वर्मा' और 'गुप्त' शब्द बोलने चाहिए।

३१–दिङ्नमस्कार।

अभिवादनानन्तर प्रातःकाल की सन्ध्या में पूर्व दिशा से और सायङ्काल की सन्ध्या में पश्चिम दिशा से आरम्भ कर दिङ्नमस्कार करना चाहिए। हाथ जोड़ कर 'प्राच्यै दिशे नमः' 'दक्षिणायै दिशे नमः' 'प्रतीच्यै दिशे नमः' 'उदीच्यै दिशे नमः' इन मन्त्रों से चारों दिशाओं को नमस्कार करे, पूर्व वा पश्चिम दिशा के अभिमुख खड़ा हो कर 'ऊर्ध्वाय नमः' अधराय नमः' 'अन्तरिक्षाय नमः' 'भूम्यै नमः' इन मन्त्रों से नमस्कार करे। यहाँ पर यह समझना चाहिए कि जिस दिशा को नमस्कार करना हो, उस दिशा के अभिमुख हो हाथ जोड़ कर नमस्कार करना चाहिए। ऊर्ध्व दिशा को नमस्कार हाथों को ऊपर उठा कर करना चाहिए। एवं अधर दिशा का भी जानना। अनन्तर "विष्णवे नमः इस मन्त्र से सूर्यमण्डल मध्यवर्ती भगवान विष्णु को नमस्कार करके–

"ध्येयस्सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती ।
नारायणस्सरसिजासनसन्निविष्टः ॥
केयूरवान्मकरकुण्डलवान्किरीटी ।
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥"

इस श्लोक का अनुसन्धान करते हुए सूर्यमण्डल मध्यवर्ती कमलरूपी आसन में विराजमान किरीट हार केयूर मकरकुण्डल आदि नाना भूषणों से अलङ्कृत शङ्खचक्रधारी भगवान् नारायण का ध्यान करना चाहिए।

३२–प्रणाम ।

पश्चात् साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिए। प्रणाम के समय

"शङ्खचक्रगदापाणे द्वारकानिलयाच्युत ।
गोविन्द पुण्डरीकाक्ष रक्ष मां शरणागतम् ।"

इस श्लोक का सार्थ अनुसन्धान करना चाहिए। दोनों पादों को लंबा पसार कर, दोनों हाथों को जोड़कर मस्तक के आगे लंबा करे और मस्तक को भूमि पर रख कर दण्डाकार पड़ जाय; मन, बुद्धि, अभिमान को भी भगवान के विषय में लगा दे, यही साष्टाङ्ग प्रणाम है।

३३–अभिवादन ।

इसकी विधि लिखी गई है, भूमि से उठ कर एक बार अभिवादन पूर्वोक्त क्रम से करना चाहिए।

३४—आचमन ।

इसकी विधि भी पहले लिखी गई है, उसके अनुसार दो बार आचमन करना चाहिए। आचमन के अनन्तर दोनों हाथों में जल भर कर "श्रीभगवत्समाराधनम्" ऐसा बोलते हुए उस जल को नीचे छोड़ देना चाहिए।

३५—जपस्थानप्रोक्षण ।

अनन्तर हाथ में जल ले उससे जपस्थान का प्रोक्षण करना चाहिए। "ओं भूर्भुवःस्वः" इस मन्त्र से प्रोक्षण करना चाहिए। आसन में आवाहित देवताओं का विसर्जन प्रोक्षण के अनन्तर करना चाहिए।

इसके पश्चात् श्रीवैष्णव लोग मस्तक के ऊपर अञ्जलि बाँध कर चारों तरफ फिर कर चारों प्रधान धामों को नमस्कार करते हैं—

श्रीरङ्गमङ्गलनिधिं करुणानिवासं
श्रीवेङ्कटाद्रिशिखरालयकालमेघम् ।
श्रीहस्तिशैलशिखरोज्ज्वलपारिजातं
श्रीशं नमामि शिरसा यदुशैलदीपम् ॥"

इस श्लोक के एक एक पाद से एक एक भगवान को नमस्कार किया जाता है।

कात्यायनादि परिशिष्टसूत्रोक्त संक्षेपत-स्त्रिकालसन्ध्याप्रयोगः

उत्तीर्यधौतेवाससी परिधायमृदोरुकरौ प्रक्षाल्याचम्य-त्रिरायम्यासून् पुष्पाण्यम्बुमिश्राण्यूर्ध्वं क्षिप्तोर्ध्वबाहुः सूर्यमु-दीक्षन्नुद्वयमुदुत्यं चित्रं तच्चक्षुरिति गायत्र्या च यथाशक्ति।

(का० प० सूत्र)

जो लोग पूरी सन्ध्या करने में असमर्थ हों वे स्नानादि कर के धुली धोती पहन कर, तिलक लगा कर, अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः और गोविन्दाय नमः क्रम से कह कर, तीन आचमन करें। फिर प्राणायाम करें। उसके उपरान्त तीन बार गायत्री से सूर्य को अर्घ्य दें। उसके बाद निम्नलिखित

ॐ उद्वयं तमसस्परिस्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवंदेवत्रासूर्यमगन्मज्योतिरुत्तमम् ॥

ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशेविश्वा-यसूर्यम् ॥

ॐ चित्रंदेवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः आप्राद्यावापृथिवीअन्तरिक्षꣳ सूर्यआत्माजगतस्तस्थुषश्च।

मन्त्रों से सूर्योपस्थान करें और उसके बाद यथाशक्ति गायत्री मन्त्र का जप करें।

भूतशुद्धि

सन्ध्या के आरम्भ में दो प्राणायाम करने से भूतशुद्धि हो जाती है। बहुत से लोगों का कहना है कि भूतशुद्धि किए विना आचमन भी न करना चाहिए। ऐसे लोगों की जानकारी के लिये भूतशुद्धि लिखी जाती है।

यमिति वायुवीजंकृष्णवर्णं वामनासे विचिन्त्य तस्य षोडशवार जपेन पूरकं तस्य चतुःषष्टिवार जपेनकुम्भकं तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन पापं संशोष्य दक्षनासया रेचनंकुर्यात् ॥ रमिति वन्हिवीजं रक्तवर्णंदक्षनासे विचिन्त्य तस्य षोडशवारजपेन पूरकं तस्य चतुःषष्टिवारजपेन कुम्भकं कृत्वा स देहं पापं संदह्य तस्यद्वात्रिंशद्वारजपेन तद्भस्मनारेचयेत् ॥ ठमितिचन्द्रबीजेललाटे विचिन्त्य तस्य षोडशवारजपेन वामनसया पूरयेत् वमितिवरुणवीजं शुक्लवर्णं विचिन्त्य तस्य चतुःषष्टिवारजपेन कुम्भकं कृत्वा तदुद्भवमृतेनप्लावयेत्। लमिति पृथ्वीजं पीतवर्णं विचिन्त्य तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन दक्षनासयारेचयेत् । सोहमिति कुंडलिनी जीवेन सह तेनैव

मार्गेण स्वस्थाने समानयेन् । ततस्तत्वानि च क्रमेण स्वस्वस्थाने समानयेत् इति ॥ संक्षेपतः भूतशुद्धिः ॥

पद्मासन पर बैठ कर तीन आचमन करे। धूम्रवर्ण वायु बीज यं का ध्यान और १६ बार जपते हुए वाम नासारन्ध्र से पूरक करे। ६४ बार वायु बीज को जपते हुए कुम्भक करे और दक्षिण नासारन्ध्र से ३२ बार वायु बीज का जप करते हुए पापों को सुखाते हुए रेचक करे। नाभि में अग्नितत्व का ध्यान करते हुए रक्तवर्ण वाले अग्नि बीज "रं" को १६ बार जपते हुए दक्षिण नासारन्ध्र से पूरक, ६४ बार अग्निबीज का जप करते हुए कुम्भक और ३२ बार अग्निबीज को जपते हुए और पापों को भस्म करते हुए वाम नासारन्ध्र से रेचक करना चाहिए। भ्रूमध्य पर चन्द्रबीज ठं का ध्यान करते हुए वाम नासा से १६ बार ठं का जप करते हुए पूरक करे। शुक्लवर्ण के वं बीज का ६४ बार जप और ध्यान करते हुए कुम्भक करे जिससे उत्पन्न हुए अमृत से ध्यान द्वारा अपने शरीर का प्लावन करे। फिर पीतवर्ण पृथ्वी बीज "लं" का ध्यान और ३२ बार जप करते हुए दक्षिण नासरन्ध्र से रेचक करे। यही संक्षेप में भूतशुद्धि है।

संक्षेपतः यज्ञोपवीत धारणविधिः

प्रथम आचमन करके प्राणायाम करे। अनन्तर इस कल्पना से संकल्प करें।

ममश्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानसिद्ध्यर्थं संस्कार पूर्वकं नवीन यज्ञोपवीत धारणमहं करिष्ये।

इस प्रकार सङ्कल्प करके यज्ञोपवीत (जनेऊ) को प्रक्षालन करे (धो डाले)। अनन्तर दश बार गायत्री मन्त्र से यज्ञोपवीत पर मार्जन कर्के नव तंतुओं में देवताओं को स्थापित करे।

ओं ओंकारं प्रथमतन्तौन्यसामि–ओं अग्निं द्वितीयं तन्तौन्यसामि–ओं नागान् तृतीयं तन्तौन्यसामि–ओं सोमं-चतुर्थं तन्तौन्यसामि–ओं पितृन् पंचमंतन्तौन्यसामि–ओं प्रजापतिं षष्ठं तन्तौन्यसामि ओं वायुंसप्तमंतन्तौन्यसामि–ओं सूर्यंअष्टमंतन्तौन्यसामि ओं विश्वान् देवान् नवमंतन्तौ-न्यसामि ॥

पश्चात् ग्रन्थि (गांठ) में ब्रह्मा विष्णु महेश का आवाहन करे। पश्चात् ओंतच्चक्षुर्देवहितंपुरस्तात॰ इस मन्त्र से सूर्य को दर्शित करे (दिखावे) पश्चात् यज्ञोपवीत का पूजन करे वा (मानसोपचारैःसंपूज्य) ध्यान करे।

प्रजापतेयत्सहजं पवित्रं कार्पाससूत्रोद्भव ब्रह्मसूत्रम्। ब्रह्मत्वसिद्ध्यै च यशः प्रकाशंजपस्य सिद्धिं कुरुब्रह्मसूत्रम् ॥

पश्चात् विनियोग करे ॥

यज्ञोपवीतमितिमन्त्रस्य, परमेष्ठी ऋषिःलिङ्गोक्ता देवता, त्रिष्टुपछन्दः, यज्ञोपवीत धारणे विनियोगः ॥

ॐ यज्ञोपवीतम्परमम्पवित्रम्प्रजापतेर्यत्सहजम्पुरस्तात्-आयुष्यमग्रयम्प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतम्बलमस्तु तेजः । ॐ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्यत्वायज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥

इस मन्त्र को पढ़ आचमन करके, दोनों जनेउओं को पृथक् पृथक् धारण करे । पुनः आचमन कर, यथाशक्ति गायत्री जपकर, पुराने जनेउओं को शिर से उतार कर निम्न मन्त्र पढ़ता हुआ दाहिनी ओर डाल दे ।

मन्त्र

एतावद्दिनपर्यन्तं ब्रह्मत्वं धारितं मया ।
जीर्णत्वात्त्वपरित्यागो गच्छसूत्र यथा सुखम् ॥

अथवा इस मन्त्र से निकाल कर, जल में प्रवाह करे । पश्चात् गायत्री जप का अर्पण करे यथा ।

अनेन नवयज्ञोपवीतधारणार्थे कृतेन यथाशक्ति गायत्री-जपकर्मणा, श्रीसविता देवता प्रीयतां तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

(योगसन्ध्या से उद्धृत)

॥ अथाग्निहोत्रम् ॥

ॐ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयोरभि-
स्रवन्तुनः ॥ १ ॥

अर्थ—इस मन्त्र को पढ़कर आचमन करे फिर कुण्ड में तथा मृत्तिका को वेदी पर पहिले एक हाथ लम्बे चार कुशों से वेदी को बुहार कर, कुशों को ईशानकोण में फेंक दे। फिर वेदी को गोबर से लीप कर, श्रुवे के मूल से उत्तर से आरम्भ कर तीन खड़ी रेखाएँ नीचे से ऊपर को खींचे। फिर उन तीन लकीरों में से थोड़ी थोड़ी मृत्तिका अंगूठे तथा अनामिका से उठाकर ईशानकोण में फेंक दे। फिर वेदी को जल से छिड़के। यही पंचभू संस्कार हैं। फिर इस मन्त्र से वेदी पर अग्नि स्थापन करे।

ॐ भूर्भुवः स्वः द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा तस्यास्ति प्रथिविदेविं यजनिपृष्ठोग्नि मन्नाद मन्नाद्यायादधे ॥

अर्थ—फिर गन्धाक्षत पुष्पादि से अग्निदेव का पूजन करे और आम ढाक आदि की समिधाओं से अग्नि को प्रज्वलित करे। फिर मृत्तिका आदि के जल भरे हुए एक पात्र में कुश डाल कर अग्नि से उत्तर की ओर कुशाग्रों के तीन टुकड़ों के ऊपर रख दे। यही प्रणीतापात्र है। फिर एक और मृत्तिका का पात्र ले और इसमें थोड़ा सा प्रणीता पात्र का जल डाल कर अग्नि और प्रणीता के मध्य में कुशों के ऊपर रख दे। और तीन

कुश भी उसके भीतर डाल दे यही प्रोक्षणी पात्र है। फिर श्रुवे को प्रोक्षणी पात्र के जल से छिड़क कर, हवन की अग्नि से श्रुवे को तपावै और दक्षिण की ओर रख दे जिस पात्र में हवन करने का घृत होता है, उसे आज्यस्थाली कहते हैं। उसे भी प्रोक्षणी पात्र के जल से छिड़क कर, हवन की अग्नि में घी के पात्र को तपा कर अपने सन्मुख रख ले। फिर इन अगले तीनों मन्त्रों को पढ़ ढाक आदि की तीन समिधाओं को घृत में भिंगो कर प्रज्वलित अग्नि में हवन करे।

ॐ समिधाग्निन्दुवस्यंत घृतैर्बोधयतातिथिम्। अस्मिन्हव्या जुहोतन स्वाहा ॥१॥ ॐ सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन अग्नये जातवेदसे स्वाहा ॥२॥ ॐ तन्त्वां समिद्भिरंङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसिबृहच्छोचाय विष्ठ्य स्वाहा ॥३॥

फिर आगे लिखे मन्त्रों को पढ़ कर अग्नि को नमस्कार करे।

ॐ उपत्वाग्ने हविष्मतीर्घृताचीर्यन्तु हर्य्यतजुपस्व समिधो मम ॥१॥ ओं अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादयानतीव्यख्यन्महिपो दिवम् ॥२॥

फिर यह सब मन्त्र पढ़ अग्नि में श्रुवं से घृत की आहुति दे और आहुति देने के अन्त में श्रुवे को प्रोक्षणी पात्र में लगाता जाय।

ॐ प्रजापतयेस्वाहा-इदं प्रजापतये ॥१॥ ॐ इन्द्राय-स्वाहाइदमिन्द्राय ॥२॥ ॐ अग्नयेस्वाहा-इदमग्नये ॥३॥ ॐ सोमायस्वाहा इद ॐ सोमाय ॥४॥ ओं भूरग्नये प्राणाय-स्वाहा ॥५॥ ओं भुववयिवेऽपानायस्वाहा ॥६॥ ओं स्वरा-दित्याय व्यानायस्वाहा ॥७॥ ओं भूर्भुवः स्वरग्नि वाय्वा-दित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥८॥ ओं आपो ज्योति रसोमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम् स्वाहा ॥६॥

इन मन्त्रों से हवन करने के पश्चात् प्रातःकाल के समय आगे लिखे मन्त्रों से भी हवन करे॥

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥१॥ ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥ ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्येज्योतिः स्वाहा ॥३॥ ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुष सेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्योवेतु ज्वाहा ॥४॥

यदि सायंकाल का समय हो तो ऊपर लिखे हुए चार मंत्रों को छोड़कर अगले ही मन्त्रों से हवन करना चाहिए। मन्त्र ये हैं:

ओं अग्निर्ज्योति ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥१॥ ओं अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥

ऊपर के इस दूसरे मन्त्र को मन में ही पढ़कर आहुति देकर स्वाहा शब्द का उच्चारण करे। पुनः अगले मन्त्र से तीसरी आहुति देनी चाहिए।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजराऽयेन्द्रवत्याजु षाणोऽग्निर्वेतु स्वाहा ॥३॥

यदि इससे अधिक हवन करने की इच्छा हो तो गायत्री के आगे स्वाहा शब्द को लगा कर, हवन करे। फिर अंत में "सर्ववैपूर्णꣳस्वाहा" इस मन्त्र को पढ़कर सुपारी आदि किसी फल को घृत सहित पूर्णाहुति दे। फिर अगले मन्त्र को पढ़कर प्रोक्षणी पात्र का जल कुश से अपने ऊपर छिड़के।

ओं शन्नोदेवीरभिष्टय आपोभवन्तु पीतये शंयोर-भिस्रवन्तु नः ॥

फिर बचे हुए थोड़े से घृत को चखे या सूंघे और नीचे लिखे मन्त्रों को पढ़ कर, यज्ञपुरुष भगवान् को नमस्कार कर, हवन को समाप्त करे। मन्त्र ये हैं :

ओं अयमग्नि गृंहपतिर्गार्हपत्यः प्रजापा वसुवित्तमः अग्ने गृहपतेभिद्यु म्नमभिसह यायच्छस्व। उपहूता। इहगाव उपहूता अजावयः अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः क्षेमाय नः शान्त्यै प्रपद्ये शिवꣳशामꣳशय्यो शय्योः ॥

फिर तीन बार आचमन करके, हवन की भस्म, आगे लिखे मन्त्रों के अनुसार अंगों में स्रुवे में लेकर लगावे।

ओं त्र्यायुषं जमदग्ने (मस्तक में) कश्यपस्य त्र्यायुषं (कंठ में) यद्देवेषु त्र्यायुषं (दाहिने कंधे पर) तन्नो अस्तु त्र्यायुषं (हृदय में) ॥ इति ॥

॥ अथ तर्पण विधि ॥

जिनके पिता जीवित न हों उन्हें सन्ध्योपरान्त तर्पण करना चाहिए। नित्य तर्पण न कर सके तो अमावस को निश्चय कर ले।

देवतर्पण में जल में चावल छोड़ कर, ऋषि तर्पण में जौ और पितृ तर्पण में तिल छोड़ कर यह क्रिया करनी चाहिए।

तर्पण के आरम्भ में संकल्प कर ले। जो सङ्कल्प सन्ध्या में किया जाता है उसी के अन्त में "देवऋषिपितृतर्पणमहं करिष्ये" जोड़ दे। या हाथ में जल लेकर "भगवदाज्ञा भगवत्कैङ्कर्य रूपं देवऋषिपितृतर्पणमहंकरिष्ये" कहकर सङ्कल्प कर दे।

सव्य हो कर देवतीर्थ से (अञ्जली के अग्र भाग को देवतीर्थ कहते हैं) देवतर्पण करे।

आवाहनम्—ओं तर्पणीया देवा आगच्छन्तु

आगे लिखे श्लोक में गिनाये देवताओं का तर्पण करे। जैसे—

ॐ ब्रह्मास्तृप्यन्ताम इत्यादि।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, प्रजापति

देवा यज्ञास्तथानागागन्धर्वप्सरसोऽसुराः।
क्रूराः सर्पाः सुपर्णश्चतरवो जिह्मगाः खगाः ॥
विद्याधरा जलाधारा स्तथैवाकाशगामिनः।

निराहराश्च ये जीवाः पापे धर्मे रताश्चये ।।
तेषामाप्यायनार्थै तदीयते सलिलं मया ।।

प्रत्येक देवता के नाम से एक अञ्जुली दी जाती है। देव-तर्पण पूर्वाभिमुख होकर करना चाहिए ।

अथ ऋषि तर्पणं

फिर उत्तर को मुख करके निवीती अर्थात् यज्ञोपवीत को कंठ में मालाकार करके कायतीर्थ (अंजली में जल भर के इस प्रकार छोड़े कि दोनों अंगुष्ठ मिल जावें ।) द्वारा दो दो अंजुली केवल जल की दे ।

आवाहनम् - ॐ सनकादय आगच्छन्तु

नीचे लिखे ऋषियों का तर्पण करे।

सनक, सनन्दन, सनातन, आसुरि, वोढु, पंचशिख, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, नारद, वसिष्ठ, भरद्वाज ।

पितृ तर्पण

ॐ यमाय धर्मराजाय मृत्यवेचान्तकाय च
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च
उदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः

उक्त श्लोक से अपसव्य होकर दक्षिणाभिमुख होकर यमराज को अंजलियां दे। तदुपरान्त

ॐ आगच्छन्तु मे पितरः इमं गृह्णन्त्वपोञ्जलिम्

प्रथम आवाहन करके नीचे लिखे प्रत्येक मन्त्र द्वारा तीन तीन अंजलि अपने पितरों को दे।

ॐ अद्यामुक गोत्रः पिताऽमुक शर्मातृप्यतामिदं जलं :सतिलं तस्मै स्वधा

इसी प्रकार पिता, पितामह प्रपितामह, माता, दादी, परदादी, नाना, परनाना वृद्धि परनाना, नानी, परनानी, वृद्धि परनानी, गुरु, परगुरु परात्पर गुरु, परमेष्ठी गुरु तथा अन्य जो सगे सम्बन्धी हों उन्हें तिलांजलि दे। सब को तिलांजलि देने के बाद नीचे लिखे मन्त्र से अन्तिम अञ्जलि दे :—

ॐ येऽबान्धवाः बान्धवायेन्यजन्मानि बान्धवाः।
ते तृप्यन्तु मद्दत्तै अस्मात्तोय कांक्षिणः॥
अग्नि गंर्भाश्च ये जीवाः येप्यदग्धा कुलेमम।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्तायाः परांगतिम्॥१॥

आब्रह्म भुवनाल्लोकान् देवर्षि पितृ मानवाः मातृ-माता महोदयः अतीत कुलकोटीनां सप्तद्वीप निवासिनां मया दत्तेन तोयेन तृप्यन्तु भुवनत्रयम्। आब्रह्मस्तम्ब पर्यन्तं जगतः तृप्यन्तु, जगतः तृप्यन्तु, जगतः तृप्यन्तु।

इसके उपरान्त नीचे लिखे मन्त्र को पढ़कर वस्त्र को निचोड़े।

ये चास्माकं कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणोमृताः।
ते तृप्यन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकं॥

इसके उपरान्त राजर्षि भीष्म को नीचे लिखे मन्त्र से तीन अंजुलि दे।

वैयाघ्रपादगोत्राय सांख्य प्रवराय च।
अपुत्राय ददाम्येतद् जलं भीष्म वर्मणे॥

इसके उपरान्त हाथ जोड़ कर नीचे लिखा श्लोक पढ़े :—

भीष्मः शान्तनो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
अवरिद्धमवाप्नोति पुत्रपौत्रादिकं क्रियाम्॥

फिर सव्य होकर आचमन करे और सूर्य नारायण को नीचे लिखे श्लोक से तीन अंजलि अर्घ्य दे :—

एहि सूर्य सहस्रांशे तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर॥

फिर हाथ जोड़ कर सूर्य भगवान की स्तुति कर के तर्पण कर्म समाप्त करे।

ॐ नमो विस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णु तेजसे।
जगत्सवित्रे, शुचये सवित्रे कर्म दायिने॥

जवाकुसुम संकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम् ।
ध्वन्तारिं सर्व पापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकर ॥
पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिताहि परमं तपः ।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्व देवताः ॥
आदित्यस्य नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिने दिने ।
सप्तजन्य सहस्रेषु दारिद्र्यं नोऽपजायते॥

इसके बाद हाथ में जल ले कर नीचे लिखा वाक्य कह कर जल छोड़ दे ।

कृतैतत् तर्पण कर्म पितृरूपी जनार्दन देवता प्रीयतां न मम ।

श्री विष्णुः, श्री विष्णुः, श्री विष्णुः ॥

॥ भगवत्पूजनम् ॥

मानुष्यं दुर्लभं लोके पूजा तत्रापि चक्रिणः ।
भक्तिस्तत्रापि विप्रेन्द्र दुर्लभा परिकीर्तिता ॥
संसाराब्धिं दुःखपूर्णं त्वपारं तुर्तुं वाञ्छायस्य चित्तेस्तिपुंसः ।
भक्त्या नित्यं वासुदेवस्य पूजां कुर्यान्नित्यं कर्मणासोखिलेन ॥

अर्थात् हे ऋषि ! संसार में मनुष्य का जन्म बड़ा दुर्लभ है, उसमें भी भगवान की पूजा दुर्लभ और पूजन में भी भक्ति दुर्लभ कही गयी है ।

हे जैमिनि ! जो मनुष्य इस दुःखपूर्ण संसार सागर के पार जाना चाहता है उसे भक्तिपूर्वक सम्पूण कर्मों से युक्त भगवान वासुदेव (रूपी शालग्राम) का पूजन नित्य करना चाहिए ।

शालग्राम शिला में भगवान स्वयं व्यक्त हैं उनमें प्राणप्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं । पूजन भी सरल है । पूजनविधि के पूर्व एक गृहस्थ को शालग्राम जी के सम्बन्ध में कुछ विशेष बातें बतलाई जाती हैं ।

शालग्राम की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पद्म-पुराण के कार्तिक-माहात्म्य में यम और धूम्रकेश का एक संवाद पाया जाता है । धूम्रकेश ने यमराज से पूँछा था—"हे धर्मराज ! आप सर्वज्ञ हैं, और नारायण के कृपापात्र हैं; अतः मेरे संशय को दूर कीजिये ।

गङ्गा जैसी पवित्रसलिला नदियों को छोड़ कर सर्वव्यापक हरि गण्डकी में क्यों उत्पन्न हुए ? इसका कारण बतलाइये"। यमराज ने कहा—"हे धूम्रकेश ! प्रथम कल्प में वेदशिरा नामक एक मुनि ने जीवों के कल्याण के लिए गङ्गा के तट पर बड़ा उग्र तप किया था। उनके आश्रम में बहुत से फलवान वृक्ष थे और सब जीव सहज वैर भाव को छोड़ कर रहते थे। उनकी उग्र तपस्या देख कर इन्द्र घबड़ाये कि कहीं यह हमारा इन्द्रासन न छीन ले। अतः तपस्या भङ्ग कराने के लिए उन्होंने मंजुवाक नामक एक बड़ी सुन्दरी अप्सरा को वेदशिरा मुनि के आश्रम में भेजा। इठलाती हुई वह अप्सरा मुनि के आश्रम में पहुँची और मुनि के चरण पकड़ कर बोली—"मैं राह भूल कर आपके यहाँ पहुँच गई हूँ। मुनि अप्सरा के रूपजाल में फँस गए और पीछे जब उन्हें अपनी भूल ज्ञात हुई तब क्रोध में भर कर उन्होंने अप्सरा को शाप दिया कि जिस तरह काम के मद से अन्धो हो कर तूने नदी की तरह आकर मुझे संसाररूपी समुद्र में डुबोया है उसी तरह तू नदी बनकर समुद्र में डूबेगी। यह शाप पा कर अप्सरा बहुत घबड़ाई और मुनि के चरण थाम कर बोली "हे ऋषिसत्तम ! मैं स्त्री हूँ। अतः दयनीय हूँ। पराधीन होने के कारण ही मुझे ऐसा करना पड़ा है। अतः आप मुझ पर प्रसन्न हों और मुझे क्षमा करें।" इस प्रार्थना पर आशुतोष मुनि प्रसन्न हो कर बोले—अच्छा जा तेरे प्रवाह में लोगों के कल्याण के लिए शालग्राम के रूप में जनार्दन विष्णु उत्पन्न होंगे। वे लोगों

को मुक्ति देंगे जिससे तेरा यश बढ़ेगा। हे शोभने! तेरा जन्म सफल है। क्योंकि दुर्लभ भक्ति-दायक भगवान् नारायण को तू धारण करेगी। मेरा शाप तेरे लिए वरदान हो गया। यमराज ने कहा कि वही मंजुवाक् अप्सरा गण्डकी नाम्नी नदी हो गई है और वृन्दा के शाप से विष्णु शालग्राम के रूप में उस नदी में विद्यमान रहते हैं।"

गरुड़पुराण में लिखा है कि हिमालय के दक्षिण भाग (अर्थात नैपाल) में उत्तर विष्णुसान्निध्य क्षेत्र है; जो बारह योजन के विस्तार में है। इसमें चक्रा (गण्डकी) नाम्नी नदी और ब्रह्मा का रचा तीर्थ है। इसके उत्तर में जो पर्वतशृङ्ग है, उसकी छाया में प्राप्त पाषाण और श्रेष्ठ वृक्ष सब चक्रों से चिह्नित हैं। यदि कोई मनुष्य भी वहाँ रहे तो कुछ समय निवास करने के उपरान्त उसकी अस्थियों, मस्तक तथा पीठ पर चक्र के चिह्न हो जाते हैं। वहाँ के पशु पक्षी तक चक्र से चिह्नित हो जाते हैं। ऐसा प्रभावशाली यह क्षेत्र है। उसी क्षेत्र में नाना आकारवाली शालग्राम शिलाएँ प्राप्त होती हैं। उनका पूजन मनुष्य को भक्तिपूर्वक करना चाहिए जिससे चारों पदार्थ अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त हों।

कर्म-संहिता में लिखा है कि भगवान् हिरण्यगर्भ आद्य वज्रकीट हो कर पृथ्वी में विचरने लगे। उस सुवर्णमय भ्रमर को देख कर देवताओं ने भगवान् को पहचाना और उनका पूजन किया। "सनातन गरुड़ को आते देख ऊँचे पर्वतशृङ्ग का रूप धारण

कर विष्णु नें उनके वेग को रोका । इस तरह सहसा उनका वेग रुक जाने से, वे सब हिरण्यकीट और उनके पीछे पीछे आनेवाले सब भौरे उस पर्वत के बड़े बड़े बिलों में घुस गये और वहाँ की शिलाओं में चक्र निर्माण करने लगे। इस तरह चक्राङ्कित शालग्राम शिलाओं के चक्र भिन्न भिन्न प्रकार के हो गये। उनका वर्णन आगे दिया जाता है।

मठ केसर भेदेन चक्रं तद्विविधं भवेत् ।
स्निग्धैः सूक्ष्मैः केसरैर्यद्व्याप्तं तत्केसरं भवेत् ॥

वाराह पुराणे

मठ और केसर के भेद से चक्र दो प्रकार के होते हैं। स्निग्ध और सूक्ष्म। केसर के रंग के निशान जिन पर होते हैं वे केसर कहे जाते हैं।

तद्धीनं मठ चक्रं स्यान्मृद्वीका कृत्तिकं च यत् ।
पूर्वोक्तं केसरं चक्रं मठ चक्राद्विशिष्यते ॥

केसर के चिन्ह से जो हीन होता है उसे मठचक्र कहते हैं। केसरचक्र, मठचक्र की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है।

यत्प्रोक्तं द्विविधं चक्रं तत्पुनर्द्विविधं भवेत् ।
जलजं स्थलजं चैव लक्षणं तस्य कथ्यते ।
सुस्निग्धं दीप्ति संयुक्तं चक्रं तज्जलजं भवेत् ।
कर्कशं क्षीण तेजो यत्तच्चक्रं स्थलजं भवेत् ॥

पूर्वोक्त दो भेदों के सिवाय जलज और स्थलज दो भेद और हैं। स्निग्ध और चमकती हुई जो चक्र वाली शिला है उसे जलज कहते हैं और कठोर, रूखी तथा क्षीण-तेज शिला को स्थलज कहते हैं।

एतयोर्जलजं शस्तं नदी पर्वत योगतः।
मध्यमं स्थलजं प्रोक्तं पर्वतस्यैव योगतः॥

इन दोनों में नदी और पर्वत में प्राप्त जलज प्रशंसनीय हैं और पर्वत में प्राप्त स्थलज मध्यम होता है।

पद्माकारं क्वचिच्चक्रं शिलायां जायते धरे।
समासेन मया प्रोक्तं चक्राणां लक्षणं प्रिये॥
सम्यग्विचार्य स्वधिया ग्राह्यं पूजार्थमादरा इति।

हे पृथ्वी! किसी किसी शिला में पद्म के आकार का चक्र होता है (वह भी अच्छा माना जाता है)। हे प्रिये! संक्षेप में मैंने चक्रों का लक्षण बतलाया। ब्राह्मण को अपनी बुद्धि से शालग्राम शिला ढूँढ़ कर उनकी पूजा करनी चाहिए।

चक्र संख्या न यत्रास्ति वर्णोक्तिर्नास्ति यत्र वै॥
द्वित्वं कात्स्न्र्यं च विज्ञेयं तत्र तत्र वसुन्धरे।

हे वसुन्धरे! जिनमें चक्र संख्या और वर्णोक्ति न हो उनको द्वित्व और कात्स्न्र्य कहते हैं।

शालग्रामं न स्पृशेत्तु हीनवर्णो वसुन्धरे।
स्त्री शूद्र कर संस्पर्शो वज्रस्पर्शाधिको मतः॥
मोहाद्यः संस्पृशेच्छूद्रो योषिद्वापि कदाचन।
स्वपेत नरके घोरे यावदाभूत संप्लवम्॥

हे वसुन्धरे! हीन वर्ण वालों को शालग्राम का स्पर्श न करना चाहिए। स्त्री और शूद्र का स्पर्श वज्र स्पर्श के समान कठोर होता है। प्रमाद से यदि स्त्री तथा शूद्र शालग्राम का स्पर्श कर ले तो उसे प्रलय पर्यंत घोर नरक में वास करना पड़ता है।

यदि भक्तिर्भवेत्तस्य स्त्रीणां वापि वसुन्धरे॥
दूरादेवास्पृशन् पूजां कारयेत्सुसमाहितः।

यदि भक्ति हो तो स्त्रियाँ बिना छुए दूर से ही तुलसी फूल चढ़ा कर पूजा कर सकती हैं।

क्रय क्रीता परिज्ञेया मध्यमा चापिताधमाः॥
एवं लक्षण सम्पन्ना पारम्पर्य क्रमागता।
उत्तमा सा तु विज्ञेया गुरुदत्तापि तत्समः॥

परम्परा से प्राप्त तथा गुरु से प्राप्त शालग्राम उत्तम फल को देने वाले होते हैं और मूल्य देकर लिए गये मध्यम तथा और किसी उपाय से प्राप्त अधम फल के देने वाले होते हैं।

क्षीरे वा तण्डुले वापि शालिग्रामं निवेशयेत्।
दृष्ट्वाधिक्यं तयोः किंचिद्गृहणीयाद् बुद्धिमान्नरः॥
स्कन्दपुराणे

शालग्राम को जब घर में लावे तो दूध या चावल (को तौल कर) में एक दिन उनको रख दे और दूध या चावल का परिमाण यदि कुछ बढ़े तो उस मूर्ति को रख ले।

शालग्राम समा पूज्या विषमा न कदाचन।
विषमेह्येक एवस्यात्समे द्वौ न कदाचन॥

शालग्राम सम संख्या में रखने चाहिए, विषम में नहीं। विषम में एक पूजनीय है और सम में दो त्याज्य हैं।

उत्तमं शुभदं प्रोक्तं जघन्यं निन्दितं भवेत्।
मध्यमं नामं सदृशं फलदं हि प्रकीर्तितम्॥

उत्तम शुभ फल देने वाले, जघन्य लक्षण के निन्दित फल देने वाले और मध्यम यथा नाम तथा फल देने वाले होते हैं।

आसनं चतुर्धास्याच्चलं वाऽचलमेव च।
विषमं पार्श्वकं चैव शालग्राम शिलागतम्॥

शालग्राम में चार तरह के आसन होते हैं यथा, अचल, चल, विषम और पार्श्व।

अचलं तु स्थिरा लक्ष्मीश्चलं तत्स्थान भङ्गदम्।
दुःखप्रदं तु विषमं पार्श्वयोद्वेगदं स्मृतम्॥
आसनं च विचार्यैव ग्राह्यं लक्षण कोविदैः।

अचल स्थिरा लक्ष्मी देने वाले, चल स्थान भंग करने वाले, विषम दुखदायी और पार्श्वद उद्वेगकारी होते हैं। अतः आसन देखकर ही विद्वानों को शालग्राम ग्रहण करना चाहिए।

वृत्त सूत्राष्टमो भागं उत्तमं चक्र लक्षणं।
मध्यमं तु चतुर्भागं कनीयस्तुत्रि भागकम् ॥

पुराण संग्रहे

एक सूत से शालग्राम की गोलाई नाप ले। उस सूत के आठवें भाग के आकार वाला मुँह जिन शालग्राम का है वह उत्तम, चौथे भाग के मुखाकार वाले मध्यम और तीसरे भाग के मुख वाले शालग्राम अधम फल को देने वाले हैं।

गृहे लिङ्गं द्वयं नार्च्यं गणेश त्रयमेव च।
द्वे चक्रे द्वारका यास्तु नार्च्यं सूर्यं द्वयं तथा ॥

पद्मपुराणे

दो लिङ्ग, तीन गणेश, दो द्वारका चक्र और दो सूर्य गृहस्थ को घर में एक साथ न पूजने चाहिए।

नाक्षतै पूजयेद्विष्णुं न केतक्या सदाशिवं।
आरक्तैर्नार्चयेच्छंभुं करवीरांबुजैर्विना ॥

अक्षतों से विष्णु का पूजन न करे, शिव पर केतकी का फूल न चढ़ावे, लाल कनैर को छोड़ कर शिव पर लाल रंग का और कोई फूल न चढ़ावे।

याश्चतास्वपि सूक्ष्माः स्युस्तः प्रशस्ततराः स्मृता।
यथा यथा शिला सूक्ष्मा महत्पुण्यं तथा तथा ॥
तस्मात्तां पूजयेन्नित्यं धर्मकामार्थ सिद्धये।
तत्राप्यामलकीतुल्या सूक्ष्माचातीव या तथा ॥

शालग्राम जितने ही छोटे आकार के होंगे उतने ही प्रशंसनीय होंगे, जैसे जैसे शालग्राम छोटे मिलेंगे वैसे ही वैसे उनके पूजन का माहात्म्य बढ़ता जायगा। आँवले के बराबर शालग्राम बहुत अच्छे और कल्याणदायक समझे जाते हैं।

निवसामि सदा ब्रह्मन् शालग्रामोद्भवाश्मनि ॥
तत्रैव वर्ण चक्रादि भेदान्नामानि में श्रृणु ॥
शुक्लो रक्तस्तथा कृष्णोद्विवर्णो बहुवर्णवान् ॥
एक चक्रस्य संज्ञास्तु पंचज्ञेया यथा क्रमम् ॥

विष्णु ने कहा—हे ब्रह्मन्! शालग्राम शिला में मेरा वास सदा रहता है। उन शालग्राम के वर्ण, चक्रादि भेदों को सुनो। शुक्ल, रक्त, कृष्ण द्विवर्ण तथा बहुवर्ण वाले ऐसे क्रम से एक ही शालग्राम के पाँच भेद होते हैं।

नरसिंहो महादेवः पृथुवक्षास्सदंष्ट्रकः।
ब्रह्मचर्येण पूज्योसौ नान्यथा पूजितोभवेत् ॥

गरुड़ पुराणे

पृथुवक्षा और पैने दाँतों वाले महादेव श्रीनृसिंह का पूजन ब्रह्मचर्य पूर्वक करना चाहिए, प्रमाद करने से नृसिंह जी बड़ी हानि पहुँचाते हैं।

स्थूल चक्रो भवेद्विष्णुर्मोक्षैक फलदोर्चितः।
लक्ष्मीनारायण श्रीमान्भुक्तिमुक्ति फलप्रदः ॥

स्थूल चक्र वाले विष्णु होते हैं जो मोक्ष के दाता हैं

लक्ष्मीनारायण की शालग्राम मूर्ति भुक्ति तथा मुक्ति को देने वाली होती है।

अनेक मूर्तयः सन्ति तत्तल्लक्षण लक्षितः ॥
वैलक्षण्य विशेषेण ज्ञातुं शक्यनताः कलौ ॥

अनेक लक्षणों से युक्त शालग्राम की मूर्तियाँ मिलती हैं। किन्तु इस कलिकाल में उन विचित्र लक्षणों को पहचानने वाले नहीं मिलते।

एकैकेनैव चिन्हेन लांछिता नेन शस्यते।
अश्वाकृतिस्तथा मुद्रा साक्षमाला सपद्मका ॥
पद्मांकिता भवेन्मुद्रा हयग्रीवेति विश्रुता।
भय दुःखांतरैर्मुक्तो नरः पापात्प्रमुच्यते ॥

एक चिन्ह वाली शिला प्रशस्त होती है और अश्व आकृति वाली तथा अक्षमाला और पद्म से युक्त शिला हयग्रीव नाम से प्रसिद्ध है। उसके पूजन से मनुष्य भय, दुख पाप और विघ्नों से मुक्त होता है।

मत्स्यांकिताश्च ये चक्रा आयुदाः पुष्टिदा नृणाम्
सदा पूज्या ग्रहस्थेन स्थितस्तत्राहि केशवः ॥
कूर्मांकिताश्च ये चक्रा महा सन्तति कारकाः।
महार्थकारका दिव्या हरिस्तत्र व्यवस्थितः ॥

वराह मूर्ति संयुक्तं यत्तुचक्रं प्रदृश्यते ।
पूजनाल्लभते राज्यं पृथिव्यामेक राजकम् ॥

मत्स्य के चिन्ह वाले चक्र आयु और पुष्टि को देने वाले हैं और उनमें केशव का वास है इसलिये गृहस्थों को सदा उनकी पूजा करनी चाहिये। कूर्म के चिन्ह वाले चक्र में हरि का वास है और वह बहुत सन्तान प्रद, दिव्य और अर्थ के देने वाले हैं। वराह मूर्ति वाले चक्र के पूजन से पृथिवी का एक राज्य प्राप्त होता है।

दधिवामन संज्ञेस्याद्गोभूधांन्यधनप्रदः ।
यः स्यात्संतानगोपालः पुत्रपौत्रादि वृद्धिदः ॥

दधिवामन संज्ञा वाले गौ, धन और अन्न के देने वाले होते हैं। सन्तान गोपाल के पूजन से पुत्र पौत्रादिकों की वृद्धि होती है।

चक्रे द्वार स्थितेज्ञेयः सौख्यैक फलदोचितः ।
चक्रे तु मध्य देशस्थे तेंषामाख्यानकं शृणु ॥
परमेष्ठी जितक्रोधस्तथा नारायणोव्ययः ।
अनंतश्चैव विज्ञेयो नाना मूर्तिश्च वै भवेत् ॥
राज्यं मृत्युं धनं चैव संतानं वाञ्छितार्थकं ।
ददाति पूजितो लोके तस्माद्ज्ञात्वार्चयेन्नर ॥

जिस शालग्राम शिला के मुख्य द्वार पर ही चक्र हो उसकी

पूजा करने से सुख मिलता है। जिन शिलाओं के मुख के मध्य में चक्र होता है उनको परमेष्ठी, जितक्रोध, नारायण, अव्यय और अनन्त कहते हैं। उनके पूजन से लोक में राज्य धन, संतान और मनोरथ तथा इच्छा मृत्यु मिलते हैं, अतः मनुष्य को उनकी बड़ी श्रद्धा से पूजा करना चाहिए।

वामनाख्यो भवेद्देवो ह्रस्वो यः स्यान्महाद्युतिः।
ऊर्ध्वं चक्रस्त्वधश्चक्रः सोपिस्वार्थप्रदोनृणाम्॥

पद्मपुराणे

आकार में छोटा नीचे और ऊपर जिसके मुंह में चक्र होता है और जो बड़े तेज वाला है उसका नाम वामन है। वामन शालग्राम के पूजन से मनुष्य के मनोरथ पूरे होते हैं।

पूर्वभागे त्रिवदनः पश्चादेकोस्य संयुतः।
चक्रपाणिरितिख्यातश्चक्रवर्तित्वदायकः॥
पद्माकारे च चक्रे द्वे मध्ये लंबाचरेखिका।
गरुडस्सन्तु विज्ञेयो भुक्ति मुक्ति प्रदायकः॥
द्विपद्माभ्यामुपेतंयद्गरुडं भुवि दुर्लभं।
दुर्लभं समचक्रं च कलौ कल्मश नाशनं॥
चक्राकारेख पंक्तिश्च यत्र रेखामयी भवेत्
स सुदर्शन इत्येवंख्यातः पूजाफलप्रद
द्वारद्वये चतुश्चक्रः समद्वार विभूषितः
जनार्दनः स विज्ञेयः पुत्रलाभं प्रयच्छति॥

जनार्दनं विजानीयाद्वनमाला विभूषितम् ।
ऊर्ध्वाधोद्वे समेचक्रे सूक्ष्म चक्रेण चिन्हितः ॥
अधश्चक्राग्र विलसद् धिबिंदु सवर्तु लम् ।
वामनन्नीलवर्णाभं वदन्तिदधिवामनम्
सूक्ष्मद्वारश्चतुश्चक्रोवनमालांकितोदरः
लक्ष्मीनारायणः श्रीमान्भुक्तिमुक्ति फलप्रदः
चत्वारि सूक्ष्म चक्राणि द्वारभागे भवेतिहि
उदरे वनमाला च लक्ष्मीनारायणो भवेत्
पूजनीयः सदा भक्तैर्भुक्तिमुक्ति फलप्रदं
दीर्घ द्वारयुता स्निग्धा द्वारमध्ये द्विचक्रयुक् ।
चक्रमेकं पुच्छभागे दक्षिणे शंखसाकृतिः ॥
वामे प्रदृश्यते रेखा मत्स्मूर्तिः शुभप्रदा ।

एक तरफ जिसके एक मुख और दूसरी तरफ तीन मुख हों ऐसी शिला का नाम चक्रपाणि है इसके पूजन से चक्रवर्तित्व प्राप्त होता है। जिसमें पंखों की तरह दोनों तरफ चक्र हों और बीच में लम्बी शिला हो भुक्ति तथा मुक्ति देने वाली ऐसी शिला को गरुड़ कहते हैं। कलि में पापों का नाश करने वाले ऐसे शालग्राम प्राप्त होना कि जिसके दोनो तरफ बराबर के चक्रयुक्त पंख हों दुर्लभ है।

जिस शिला में एक चक्र हो और जिसमें रेखाएं पंक्ति बद्ध हों उसे तुरन्त फल देने वाले सुदर्शन कहते हैं।

जिस शिला में दो मुख में चार चक्र हों वह पूजे जाने पर सन्तान प्रद जनार्दन भगवान् हैं।

ऐसी दो मुह और चार चक्र वाली मूर्ति जिसमें वनमाला हो तो और भी प्रशस्त है। एक मुख में आगे ही चक्र हो और जगह जगह जिसमें दही के चिन्ह हों और जिनकी आभा नीलिमा लिये हो उसे दधिवामन कहते हैं।

चिकनी बड़े मुख वाली मूर्ति हो, मुख में दो चक्र और पुच्छ भाग पर एक चक्र हो और दहिना भाग शंखाकृति हो। वाम भाग में रेखा हो तो ऐसी मूर्ति शुभप्रदा मत्स्यमूर्ति कहलाती है।

एक मुख में जिनके चार चक्र हों और जो वनमाला से विभूषित हो ऐसे दुर्लभ लक्ष्मीनारायण भक्ति और मुक्ति के दाता होते हैं। बहुत से चक्रों वाली (चार चक्रों से अधिक) मूर्ति या चपटी मूर्ति या रूखी मूर्ति का पूजन करने से चिन्ता दरिद्र, और उद्वेग होता है अतः ऐसी मूर्ति का पूजन न करे। यह नियम गृहस्थ के लिये है। मंदिर तथा साधु सन्तों के लिए नहीं।

माहात्म्य

यदि विप्रः समुत्सृज्य शालग्राम शिलार्चनं।
स याति नरकं घोरं यावदाचन्द्र तारकम्॥

जो ब्राह्मण शालग्राम के पूजन को त्यागता है वह जब तक आकाश में चन्द्रमा और तारागण हैं तब तक नरक में रहता है।

शालग्रामो यदानास्ति यत्र नैवामृतोद्भवा।
स्मशान सदृशं गेहं स विप्रः पंक्तिदूषकः॥
(हेमाद्रौ देवलः)

जिस विप्र के यहाँ अमृतोद्भवा तुलसी और शालग्राम नहीं हैं वह घर श्मशान के तुल्य है और वह ब्राह्मण पंक्ति में त्याज्य है।

कामासक्तोपि क्रुद्धोपि शालग्राम शिलार्चनं।
भक्त्या वा यदि वा भक्त्या कृत्वा मुक्तिवाप्नुयात् ॥
लिङ्ग कोटि सहस्त्रैस्तुपूजितैर्यत्फलं भवेत्।
तत्फलं कोटि गुणितं शालग्राम शिलार्चनात् ॥
शालग्राम शिलाग्रेतु ये कुर्वन्ति सुरार्चनं।
तत्र दानं च होमं च सर्वं कोटि गुणं भवेत् ॥

(लिङ्गपुराणे)

कामी हो या क्रोधी हो, भक्तिपूर्वक वा भक्तिरहित किसी भी रूप में जो शालग्राम का पूजन करता है वह मुक्ति प्राप्त करता है। कोटि लिङ्गों के पूजन करने से जो फल प्राप्त होता है उसका कोटि गुना फल एक दिन शालग्राम का पूजन करने से प्राप्त होता है। शालग्राम के आगे जो देवपूजन, दान तथा होमादि किये जाते हैं वे कोटिगुणा फल के देने वाले होते हैं।

शालग्राम शिलाचक्रं यो दद्याद्दानमुत्तमम्।
भूचक्रं तेन दत्तं स्यात्सशैल वन काननम् ॥

मत्स्य पुराणे

जो मनुष्य शालिग्राम शिलाचक्र का उत्तम दान करता है उसे पर्वतों और वनों सहित पृथ्वी के दान का फल मिलता है।

शालग्राम शिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः ।
न बाधते ग्रहास्तत्र भूत वैतालकादयः ॥
शालग्राम शिलायत्र तत्र तीर्थं तपोवनं ।
यतः संनिहितस्तत्र भगवान् मधुसूदनः ॥
(बृहन्नारदीये)

-जहाँ शालग्राम शिला रूपी केशव का वास है वहाँ बुरे ग्रह भूत और वैतालादि की बाधा नहीं रहती। शालग्राम शिला जहाँ रहती है वहाँ साक्षात् भगवान मधुसूदन के साथ सब तीर्थ और तपोवन रहते हैं।

यदामनंति वेदांता ब्रह्म निर्गुणमच्युतं ।
तत्प्रसादाभवेन्दृणां शालग्राम शिलार्चनात् ।।
यथा काष्ठ स्थितोवह्निर्मथ्यमानः प्रकाशते ।
तथैवात्मस्थितं ज्ञानं पूजनाद्धि प्रकाशते ।
न तथा रमते लक्ष्म्या न तथा स्वपुरे हरिः ।
शालग्राम शिला चक्रे यथा स रमते सदा ।
अग्निहोत्रं कृतं तेन दत्ता पृथ्वी ससागरा ।
येनार्चितो हरिश्चक्रे शालग्राम समुद्भवे ॥
विना तीर्थैर्विना दानैर्विनाहोमैर्विना मखैः ।
मुक्तिं यांति नरा वैश्य शालग्राम शिलार्चनात् ॥
(पाद्मे)

वेदांती ज़िसे ब्रह्म कहते हैं जो निर्गुण और अच्युत है वह परमात्मा शालग्राम की पूजा करने वाले मनुष्य पर प्रसन्न होता है।

जैसे काष्ठ स्थित गुप्त अग्नि रगड़ते रगड़ते प्रकट हो जाता है वैसे ही आत्मज्ञान शालग्राम का पूजन करने से प्रकाशित होता है।

लक्ष्मी के साथ वैकुण्ठ में भी भगवान् विष्णु इतना रमण नहीं करते जितना वह शालग्राम शिला में रमण करते हैं।

शालग्राम शिला में जिसने नारायण का पूजन किया उसने ससागरा पृथ्वी का दान किया और अग्निहोत्र भी कर लिए।

बिना तीर्थयात्रा, बिना दान, बिना होम और बिना यज्ञ किये यदि कोई मुक्ति पाने का मार्ग है तो वह केवल शालग्राम शिला के पूजन द्वारा ही है।

असत्य कथनं हिंसामभक्ष्याणां च भक्षणम्।
शालग्राम जलं पीत्वा सर्वं दहति तत्क्षणात् ॥
शालग्राम शिला दृष्ट्वा यांति पापान्यनेकशः।
सिंहं दृष्ट्वा यथा यान्ति वने मृगगणाभयात् ॥
स धन्यः पुरुषो लोके सफलं तस्य जीवितं।
शालग्राम शिला शुद्धा गृहे यस्य च पूजिता ॥
कुरुक्षेत्रेण किं तत्र सम्प्राप्ते ग्रहणे रवेः।

शालग्राम शिला यत्र दृश्यते चक्र लांछिता ॥
प्रभासे यत्फलं प्रोक्तं राहुग्रस्ते निशाकरे ।
कृते दाने भवेत्पुण्यं शालग्राम शिलाग्रतः ॥
शालग्राम शिला स्पर्शः कोटि यज्ञ फलप्रदः ।
मरणात्तत्समीपेतु काशी तुल्य फलं भवेत् ॥
कोटि द्वादश लिंगैस्तु पूजितैः स्वर्ण पंकजैः ।
यत्स्याद् द्वादश वर्षेषु दिनेनैकेन तद्भवेत् ॥

असत्य कथन, हिंसा, अभक्ष्य भक्षण के सब पाप शालग्राम का चरणामृत पीते ही तत्क्षण भस्म हो जाते हैं। जैसे सिंह को देख कर भय के मारे सब पशु भाग जाते हैं वैसे ही शालग्राम शिला के दर्शन से अनेक पाप भाग जाते हैं। संसार में वही पुरुष धन्य है और उसी का जीवन सफल है जिसके घर में शुद्ध शालग्राम शिला का पूजन होता है। घर में यदि चक्रों के चिन्ह-वाली शालग्राम शिला हो तो सूर्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्र जाने का कोई काम नहीं। जो पुण्य चन्द्रग्रहण के समय प्रभास क्षेत्र में स्नान करने से मिलता है वह शालग्राम शिला के सामने दान करने से होता है। शालग्राम शिला का स्पर्श कोटि यज्ञों के फल का देने वाला है और शालग्रामं शिला के समीप मरने से काशी में मरने का फल मिलता है। जो फल कोटि द्वादश लिङ्गों पर बारह बरस तक सोने के कमल चढ़ाने से मिलता है, वह शालग्राम के एक दिन के पूजन से मिलता है।

पिबन्ति ये नरा नित्यं शालग्राम शिला जलम् ।
पंचगव्यसहस्रैस्तुप्राशितैः किं प्रयोजनम् ॥
शालग्राम शिलायत्र तत्तीर्थं योजनत्रयम् ।
तत्र दानञ्च होमञ्च सर्वं कोटि गुणं भवेत् ॥

जो नित्य शालग्राम का चरणामृत पीते हैं उन्हें सैकड़ों बार पंचगव्य पीने की आवश्यकता नहीं। जहाँ शालग्राम शिला रहती है वहाँ के आसपास तीन योजन तक तीर्थ हो जाता है। वहाँ पर दिया हुआ दान होम आदि कोटि गुणा फल देने वाला होता है।

चरणोदक महिमा

स स्नातः सर्व तीर्थेषु सर्व यज्ञेषु दीक्षितः ।
शालग्राम शिलातोयैर्योभिषेकं समाचरेत् ॥
(पद्म पुराणे)

जिसने शालाग्राम शिला के ज़ल से मार्जन किया है उसने सब तीर्थों में स्नान कर लिए और सब यज्ञों की दीक्षा का फल भी उसे मिल गया।

गंगा गोदावरी रेवास्सद्यो मुक्तिप्रदास्तु या ।
निवसंतीह तीर्थानि शालग्राम शिला जले ॥

गंगा, गोदावरी रेवा आदि मुक्तिप्रदा नदियाँ और तीर्थ शालग्राम शिला के जल में निवास करते हैं।

अम्बरीष गृहे तेषां दासोहं वशगः सदा।
हरेः स्नानावशेषं च जलं यस्योदरे स्थितम् ॥

भगवान् ने कहा—हे अम्बरीष! हरि (शालग्राम) का चरणामृत जिसके पेट में है उसके घर में मैं दास होकर रहता हूँ।

विष्णु पादोदकं पीत्वा शालग्राम शिला भवं।
विशेषेण हरेत्पापं ब्रह्महत्यादिकं नृणाम् ॥

शालग्रामरूपी विष्णु का चरणामृत विशेष कर मनुष्यों के ब्रह्महत्यादि पापों को हरता है।

विष्णु पदोदकं पीत्वा पश्चादशुभ शङ्कया।
य आचमति संमोहाद्ब्रह्महत्यां स विन्दति ॥
(विष्णु रहस्ये)

शालग्राम का चरणामृत पान करने के अनन्तर पीछे अपवित्रता की शंका कर के जो आचमन करता है वह अज्ञान से ब्रह्महत्या को प्राप्त होता है।

अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलं।
शालग्राम शिलास्पृष्टं सर्वं याति पवित्रताम् ॥

मेरा नैवेद्य, पत्र, पुष्प फल अथवा जल यदि किसी तरह अपवित्र हो जाय तो शालग्राम की शिला के स्पर्श से पवित्र हो जाता है।

पिबन्ति ये नरा नित्यं शालग्राम शिलाजलं ।
पंचगव्य सहस्रैस्तु प्राशितैः किं प्रयोजनम् ।।
विष्णुपादोदकं यस्तु करेण पिबते यदि ।
समूढो नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।।

जो नित्य शालग्राम शिला के जल का पान करते हैं उनको हजारों बार पंचगव्य पीने की आवश्यकता नहीं। एक हाथ से विष्णु का चरणोदक लेनेवाला मूर्ख उतने समय तक नरक में जाता है जितने काल तक चौदह इन्द्र रहते हैं।

अकाल मृत्यु हरणं सर्वव्याधि विनाशनं ।
विष्णुपादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।।

अकाल मृत्यु का हरनेवाला और सब व्याधियों का नाश करनेवाला विष्णु का पादोदक पीने से पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता।

नैवेद्यैर्विविधैः पुष्पैर्दीपैर्धूपैर्विलेपनैः ।
गीतादि स्तोत्र पाठाद्यैश्शालग्राम शिलार्चनम् ।।
कुरुते मानवोयस्तु कलौ भक्तिपरायणः ।
कल्पकोटि सहस्राणि रमते सन्निधौ हरे ।।

जो पुरुष कलियुग में भक्तिपूर्वक धूप, दीप, तुलसी फूल तथा नैवेद्य से शालग्राम का पूजन करता तथा उनके सामने स्तोत्रपाठ या भजन गाता है वह पुरुष कोटि सहस्त्र कल्प तक वैकुण्ठ म रहता है।

श्रीमते रामानुजाय नमः

प्रातरुत्थाय स्वाचार्यं ध्यात्वा श्रीहरिः शरणमितित्रिवारमुच्चार्य्य गुरुपरम्परादि दिव्यप्रवन्धान् पठित्वा दैनिकविधिं विधाय।।

श्रीमतेरामानुजायनमः

अथ उद्ध्र्वपुण्ड्र तिलक धारणप्रकारः

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं श्रुतिनोदितम् ।
उद्ध्र्वपुण्ड्रविहीनस्य सर्वं तन्निष्फलं भवेत् ।।१।।

परम पूज्य श्रीहारीत महर्षि का वचन है, कि वैदिक स्मार्त यावत् कर्मानुष्ठान हैं उन सबके पूर्व ही ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण परमावश्यक है इसी कारण से हम इसका पूर्व उल्लेख करते हैं, अति बलवती आशा है, कि सहर्ष सादर महात्मा लोग आवश्य ही स्वीकार करेंगे।

जो असमर्थ पुरुष द्वादश १२ पुण्ड्रों को धारण नहीं कर सकते उनको उचित है कि दो पुण्ड्र तो अवश्य ही धारण करें और प्रति दिन जितने बार स्नान करें तब अवश्य ही उद्ध्र्वपुण्ड्र धारण करें।

प्रथम शुद्ध स्थान में पवित्र आसन पर पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठ के, ॐ केशवाय नमः ॐ नारायणाय नमः ॐ माधवाय नमः इत्यादि मंत्रों से आचमन करें। नारिकेल का अर्द्धभाग अथवा सुवर्ण चाँदी आदि धातुओं के गोकर्णाकार तीर्थाकार में शुद्ध जल रक्खें। आचमनी से थोड़ा जल लेकर वाम हस्ततल को ॐ वीर्य्यायस्त्रायफट् इस मंत्र से धो डाले, प्रणव मंत्र से श्वेत मृत्तिका का पांसा वाम हस्त में रक्खे—

द्रन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।

ईश्वरीं सर्वभूतानां त्वामिहोपह्वये श्रियम् ।।

इस मंत्र से पांसे पर थोड़ा जल छोड़े, अस्त्र मंत्र से वामहस्त स्थित पांसे के चारों ओर चुटकी बजाते हुए रक्षा करें। प्रणव मंत्र से घिसे उस मृत्तिका में षट्कोण यंत्र बनाकर मध्य भाग में नृसिंह बीजाक्षर को लिखे। फिर दक्षिण हाथ से उस घिसी हुई मिट्टी पांसाचन्दन को ढांककर, (विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि यो अस्कभयादुत्तरं सधस्थंविचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः) ॐ षौं नमः परायपरमेष्ठ्यात्मनेनमः ॐ यां नमः पराय पुरुषात्मनेनमः ॐ रां नमः परायविश्वात्मनेमनः ॐ वां नमः परायनिवृत्यात्मने नमः ॐ लां नमः पराय सर्वात्मने नमः इन दोनों मंत्रों से अभिमंत्रित के अनन्तर "भगवान् पवित्रं वासुदेवः पवित्रं शतधारं सहस्त्रधारमपरिमितधार मरिष्ट मच्छिद्रमच्युतमनन्तमक्षय मव्ययम्परम्पवित्रं भगवान् वासुदेवः पुनातु" इस शतधार मंत्र से पुनः थोड़ा जल छोड़कर तर्जनी अंगुली से मिलाते हुये भगवत्पादारविन्दों का ध्यान करे। फिर द्वादशाक्षर मंत्र उच्चारण करते हुए "भगवन्नभीष्टं में देहि ऐसी भगवान् से प्रार्थना करे" विष्णोरराटमसि, विष्णोः पृष्ठमसि, विष्णोश्श्रप्त्रेस्थो, विष्णोस्स्यूरसि, विष्णोर्ध्रुवमसि, वैष्णवमसि, विष्णवेत्त्वा' इन सात वैष्णव मंत्रों से मृत्तिका का अभिमंत्रण करे। अनन्तर तर्जनी अंगुली से लेकर प्रणव से थोड़ा मस्तक पर रखे। पश्चात् अंगुली के नख से रहित तद् तत्स्थानानुरूप सुन्दर कोण के बिना भगवच्चरणारविन्द के समान नीचे का भाग सङ्कुचित और ऊपर का भाग विस्तृत श्री के दोनों तरफ अन्तराल छोड़कर तीन अंगुल चौड़ा नासिका मूल से लेकर केश पर्यन्त ॐ केशवाय नमः इस नाम का उच्चारण करते हुये ।।१।। ललाट में उद्धर्व पुण्ड्र धारण करे।।२।। कुक्षि में नाभी से लेकर १२ अङ्गुल चौड़ा ॐ नारायणाय नमः इस नाम का उच्चारण करते हुए पुंड्र धारण करे

॥३॥ हृदय में आठ अङ्गुल ऊँचा चार अङ्गुल चौड़ा ॐ माधवायनमः इस नाम का उच्चारण करते हुए पुंड्र धारण करना चाहिये ॥४॥ कंठ में चार अंगुल ऊँचा तीन अंगुल चौड़ा ॐ गोविन्दायनमः इस नाम का उच्चारण करते हुए पुंड्र धारण करें ॥५॥ पेट के दक्षिण भाग में १२ अङ्गुल ऊँचा ३ अङ्गुल चौड़ा ॐ विष्णवेनमः इस मंत्र का उच्चारण करते हुए पुंड्र धारण करे॥६॥ दक्षिण भुजा के मूल में आठ अंगुल ऊँचा चौड़ा ॐ मधुसूदनाय नमः इस नाम का उच्चारण करते हुए पुंड्र धारण करे॥७॥ दक्षिण कंठ पार्श्व में ४ अंगुल ऊँचा ३ अंगुल चौड़ा ॐ त्रिविक्रमायनमः इस मंत्र का उच्चारण करते हुए पुंड्र धारण करे॥८॥ पेट के वाम भाग में १२ अंगुल ऊँचा ३ अंगुल चौड़ा ॐ वामनायनमः इ.. मंत्र का उच्चारण करते हुए पुंड्र धारण करें॥९॥ वाम बाहु मूल में ८ अंगुल ऊँचा ३ अंगुल चौड़ा ॐ श्री धरायनमः इस मंत्र का उच्चारण करते हुए पुंड्र धारण करे॥१०॥ वाम कंठपार्श्व में ४ अंगुल ऊँचा ३ अंगुल चौड़ा ॐ हृषीकेशायनमः इस नाम का उच्चारण करते हुए पुंड्र धारण करे॥११॥ ॐ पद्मनाभायनमः इस मंत्र से पीठ में तीन अंगुल चौड़ा ३ अंगुल ऊँचा पुंड्र धारण करे॥१२॥ गले के पीछे भाग में ३ अंगुल ऊँचा ३ अंगुल चौड़ा दामोदरायनमः इस नाम से पुंड्र धारण करे और पुंड्र के पश्चात् यदि तिलक बचे तो वासुदेव मंत्र से मस्तक परधारण करे फिर श्रीचूर्ण को घोरकर उसके बीच में श्री बीज को लिखे। अनन्तर अंगुल्यग्रभाग अथवा सींक से लेकर मंत्रोच्चारण पूर्वक दीप शिखाकार पुंड्रों के क्रम से ॐ श्रियैनमः १ ॐ अमृतोद्भवायैनमः २ ॐ कमलायै नमः ३ ॐ चन्द्रशोभिन्यैनमः ४ ॐ विष्णुपत्न्यै नमः ५ ॐ वैष्णव्यै नमः ६ ॐ वरारोहायै नमः ७ ॐ हरि वल्लभायै नमः ८ ॐ शार्ङ्गिण्यैनमः ९ ॐ देवदेव्यै नमः १० ॐमहालक्ष्म्यै नमः ११ ॐ लोकसुंदर्यै नमः १२ इन मंत्रों से धारण करे। सर्वाभीष्ट फल प्रदायैनमः

इस मंत्र से शेष श्री चूर्ण को मस्तक पर धारण करे यद्यपि महात्मा लोग पुंड्र के बनाने में आचमनी आदि का उपयोग नहीं करते तथापि सुन्दरता के कारण बहुत महात्मा लोग आचमनी का भी उपयोग करते ही हैं।

चतुश्चक्रं नमस्यामि केशवं कनक प्रभम्।
नारायणं घनश्यामं चतुश्शङ्खं नमाध्यहम् ।।१।।

(१) ललाट के चारों भुजाओं के चार चक्रो को धारण किये, हुए सुवर्ण के समान कान्ति वाले केशव भगवान् का ध्यान करे, (२) उदर के मध्य में, चारों भुजाओं में चार शङ्खों को धारण किये नील मेघ श्याम नारायण का ध्यान करे।

माधवं मणिभङ्गाभं चिन्तयामि चतुर्गदम्।
चन्द्रभासं चतुश्शृशार्ङ्गं गोविन्दमहमाश्रये।।२।।

(३) वक्षस्थल में, चारो भुजाओं में गदा को धारण किये हुए माणिक्य के समान वर्ण वाले माधव भगवान् का ध्यान करे, (४) कंठ केअग्र भाग में, चारों भुजाओं में धनुष को धारण किये हुए चन्द्र के समान वर्ण वाले गोविन्द भगवान् का ध्यान करें।

विष्णुं चतुर्हलंवन्दे पद्मकिञ्जल्क सन्निभम्।
चतुर्मुसलमब्जाभं संश्रये मधुसूदनम् ।।३।।

(५) उदर के दक्षिण पार्श्व में, चारों भुजाओं में हल को धारण किये हुए कमलकिञ्जल्क समान वर्णवाले विष्णु भगवान का ध्यान करे (६) दक्षिण बाहुमूल में चारो भुजाओं में मुसल को धारण किये हुए कमल समान वर्ण वाले मधुसूदन भगवान् का ध्यान करे।

अग्निवर्ण चतुःखड्गं भावयामि त्रिविक्रमम्।
वामनं वालसूर्याभं चतुर्बज्रं विभावये।।३।।

(७) दक्षिण कंठ पार्श्व में, चारो भुजाओं में खड्ग को धारण किये हुए अग्नि के समान वर्णवाले त्रिविक्रम भगवान का ध्यान करें (८) उदर के वाम पार्श्व में चारो भुजाओं में वज्र को धारण करने वाले वालसूर्यसमान कान्ति युक्त वामन भगवान का ध्यान करें।

श्रीधरं पुण्डरीकाभं चतुः पट्ट समाश्रये।

चतुर्मुद्गरमभ्येमि हृषीकेशं तडित्प्रभम् ।।५।।

(९) वामबाहु मूल में, चारों भुजाओं में पट्टस को धारण करने वाले रक्तकमल समान वर्णवाले श्रीधर भगवान का ध्यान करें (१०) वाम कंठ पार्श्व में चारों भुजाओं में मुद्गर को धारण किये हुए बिजली की समान वर्णवाले हृषीकेश भगवान का ध्यान करें।

पञ्चायुधं पद्मनाभं प्रणामाम्यर्करोचिषम् ।

दामोदरं चतुः पाशमिन्द्र गोपनिभंभजे।।६।।

वासुदेव मुपासेहं पूर्णेन्दुयुत सन्निभम् ।।

(११) पृष्ठभाग में पंचायुधों को धारण किये हुए सूर्य के समान कान्तिवाले पद्मनाभ भगवान का ध्यान करें। (१२) गले के पृष्ठ भाग में चारों भुजाओं के पाश को धारण किये हुए इन्द्रगोप नामक जानवर के समान वर्णवाले दामोदर नामक भगवान का ध्यान करे (१३) मस्तक पर शंख चक्र गदा पद्म धारी पूर्ण चन्द्र समान श्री वासुदेव भगवान का ध्यान करे। इस प्रकार अंजलिबाँधकर ललाटादि स्थानों में केशवादि भगवन्मूर्तियों का ध्यान करें।

अनन्तर ''श्रियैनमः'' इत्यादि पूर्वोक्त मंत्रों से चतुर्भुजा कमलासनासीना वरदाभयमुद्रायुक्ता श्रीमहालक्ष्मी जी का ध्यान करना चाहिए। पश्चात् तत्तस्थानों में पूर्वोक्त भगवन् मूर्तियों और महालक्ष्मी जी का मानसिकाराधन

करें, उनसे सन्निहित होने की प्रार्थना कर।

इति उद्धर्वपुड् धारणा विधिः।। ततः

भगवदालयमुपेत्य साष्टाङ्गं प्रणिपत्य एभिः श्लोकैः साञ्जलि घंटानाद पुरस्सरं च परमात्मानं प्रबोधयेत् ॥

कौशल्या सुप्रजाराम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्त्तते।
उत्तिष्ठ-नरशार्दूल कर्त्तव्यं दैवमाह्निकम् ।।१।।
स्वशेषभूतेन मया स्वीयैः सर्व परिच्छदैः।,
विधातुं प्रीतिमात्मनं देवः प्रक्रमते स्वयम् ।।२।।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठ गरुड़ध्वज।
उत्तिष्ठ कमलाकान्त त्रैलोक्यं मङ्गलं कुरु।।३।।

इति परमात्मानं सम्प्रार्थ्य घंटानादेनोद्बोध्य मङ्गलनीराजनं कुर्य्यादनन्तरमाग्नेयादिकोण क्रमेण जलपूर्णमर्घ्यादिपञ्चपात्रं न्यस्य तेष्वेतानि द्रव्याणि निक्षिपेत् ।

सिद्धार्थमक्षतं चैव कुशाग्रं तिलमेवच।
यवं गन्धं फलं पुष्पं अर्घ्यद्रव्याणि निक्षिपेत् ।।१।।
पाद्येदूर्वा विष्णुपर्णीं श्यामाकं पद्ममेवच।
एला लवङ्ग कङ्कोल जातिराचमनीयके।।२।।
कोष्ठ माजिष्ठ हारिद्र मुराशैलेय चम्पिकाः।
वचा कचोर लामज्जा स्नानीये ह्यौषधीः क्षिपेत् ।।३।।

उक्त द्रव्याभावे तुलसीं निक्षिपेत्, ततः ॐ विंविरजायै नमः इति मन्त्रेण विरजामावाह्य तज्जलं सर्वपात्र जले निक्षिपेत् । ततो ऽधोलिखित मन्त्रेण आत्मनः परमात्मनोऽङ्गे करन्यासमङ्गन्यासञ्चकुर्य्यात् ।

ॐ षां नमः परमेष्ठ्यात्मने नमः शिरसि। ॐ वाँ नमः पराय पुरुषात्मने नमः नासाग्रे। ॐ राँ नमः पराय विश्वात्मने नमः हृदये। ॐ वाँ नमः पराय निर्वृत्तात्मने नमः गुह्यप्रदेशे। ॐ लाँ नमः पराय सर्वात्मने नमः सर्वाङ्गे।

इति पञ्चोपनिषन्न्यासं कृत्वा श्रीमदष्टाक्षरन्यासं कुर्य्यात् ।

ॐ ज्ञानाय हृदयाय नमः। ॐ नमः ऐश्वर्य्याय शिरसे स्वाहा। ॐ नारायणाय शक्तयै शिखायै वषट् । ॐ वलाय कवचाय हूँ। ॐ नमस्तेजसे नेत्राभ्यां वौषट् । ॐ नारायणाय वीर्य्याय अस्त्राय फट्।।

ततोऽस्त्रमुद्रां प्रदर्श्य रक्षां कुर्य्यात् । तदनन्तरं भगवदर्पणीयं द्रव्यं निम्नाङ्कितमन्त्रेण शोधयेत् ।

"यं वायये नमः वायुना शोषयामि"

"रं बह्वये नमः बह्विना दाहयामि"

"वं अमृताय नमः अमृतेन प्लावयामि"।

निम्नाङ्कित मन्त्रेण तुलसीं समर्पयेत् ।।

कूर्म्मादीन् दिव्यलोकान् तदनुमणिमयं मण्डपं तत्र शेषं,
तस्मिन्धर्मादिपीठं तदुपरि कमलं चामरग्राहिणींश्च।
विष्णुं देवीं विभूषायुधमुरगगणं पादुके वैनतेयम्,
सेनेशं द्वारपालान् कुमुदमुखगणान् विष्णुभक्तान् प्रपद्ये।।१।।

अथाष्टाक्षरसम्पुटितगायत्र्या प्राणायामत्रयं कुर्य्यात्, ततः निम्नाङ्कितमन्त्रैः भगवत्पूजनं कुर्य्यात्। हरिः ॐ सहस्त्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्त्रपात्।। सभूमिꣳसर्व्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्। ॐ नमो नारायणायेत्यावाहयामि।।१।। पुरुषऽएवेद ꣳ सर्व्वंय्यद् भूतं यच्च भाव्यम्।। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाति रोहति। ॐ नमो नारायणाय।। इत्यासनं

परिकल्पयामि।।२।। त्रिपादूर्ध्वउदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः।
ततोव्विष्वङ्व्यक्क्रामत् शासनानशनेऽभि। ॐ नमो नारायणाय इत्य
परिकल्पयामि।।३।। एतावनास्यमहिमातोज्ज्यायाँश्चपूरूषः।। पादोस्
व्विश्वाभूतानि त्रिपादस्या- मृतन्दिवि। ॐ नमो नारायणाय।।४।। इतिद्विवा
पाद्यं परिकल्पयामि।। ततो व्विराडजायत व्विराजो अधिपूरुषः
सजातोऽअत्यरिच्यत पश्चाद्भूमि मथोपुरः। ॐ नमो नारायणाय। इ
त्रिवारं आचमनं परिकल्पयामि।।५।। तस्माद्यज्ञात सर्व हुतः सम्भृतम्पृषदाज्य
पशूंस्ताँश्चक्रे व्वायव्व्या नारायणान्ग्राम्याँश्चये। ॐ नमो नारायणाय।। इ
स्नानं परिकल्पयामि।।६।। तस्माद्यज्ञात्सर्व हुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे
छन्दाᳬंसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत। ॐ नमों नारायणाय इ
वस्त्रं परिकल्पयामि।।७।। तस्मादश्वाऽअजायन्त येकेचोभयादतः।। गावं
जज्ञिरे तस्म्मात्तस्माज्जाताऽजावयः।। ॐ नमो नारायणाय।। इति य
पवीतं परिकल्पयामि।।८।। तंय्यज्ञं वर्हिषि प्रौक्षन्नपुरुषज्जातमग्रतः।। तं
देवाऽअयजन्त साद्धयाऽऋषयश्चये। ॐ नमो नारायणाय।। इतिचन्द
परिकल्पयामि।।९।। यत्पुरुषंव्यदधुः कतिधाव्वयकल्पय
मुखङ्किमस्यासीत्किम्बाहूकिमूरूपादाऽउच्येते। ॐ नमोनारायणाय। इ
पुष्पाणि परिकल्पयामि।।१०।। ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहूराजन्यः कृत
ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भयाᳬं शूद्रोऽजायत। ॐ नमो नारायणाय। इ
धूपं परिकल्पयामि।।११।। चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्य्योऽअजायत
श्श्रोत्राद्वायुश्चप्प्राणश्च मुखादग्निरजायत। ॐ नमोनारायणाय।। इति दी
परिकल्यामि।।१२।। नाभ्या आसी दन्तरिक्षᳬं शीर्ष्णोद्यौः समवर्तत
पद्भयाम्भूमिर्द्दिशः श्रोत्रात्तथालोकाँन् २ऽकल्प्पयन् । ॐ नमो नरायणा
इति नैवेद्यम्परिकल्पयामि।।१३।। त्वदीयं वस्तुगोविन्द तुभ्यमेव समर्पित
गृहाण सन्मुखो भूत्वा प्रसीद परमेश्वर।। इति नैवेद्यम् ।

यत्तपुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्न्वत।। ब्वसन्तोस्यासीदाज्जयङ्ग्रीष्मइघ्मः शरद्धविः। नमो नारायणाय। इति ताम्बूलं परि कल्पयामि।।१४।।

निम्नाङ्कित मन्त्रैः — द्वर्घ्यादिभिरुपचारैः देवीः अर्चयेत्तथा सुदर्शनादिकानपि एवम् ।।

ॐ श्रीं श्रियै नमः — ॐ भूँ भूम्यै नमः — ॐ नीं नीलायै नमः

सप्तास्स्यासन्नपरिधयस् त्रिःसप्त समिधः कृताः। देवायदृघ्यज्ञन्तन्वाना-ऽअवध्नन्धन्नपुरुषं पशुम् ।। ॐ नमो नारायणाय।। इति प्रदक्षिणांपरिकल्पयामि।।१५।। यज्ञेंन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्न्यासन् ।। तेहनाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्तिदेवाः।। ॐ नमो नारायणाय।। इति पुष्पाञ्जलिं परिकल्पयामि।।१६।।

अथ साञ्जलिरधोलिखितान् श्लोकान् पठेत् ।।

असत्यमशुचिं नीचमपराधैकभाजनम् ।
अल्प शक्तिमचैतन्यमनर्हं भृत्यकर्म्मणि।।१।।
दोषागारं दुरात्मानं मामेवं परिचिन्तयन् ।
मत्समर्पितमित्येतन्नत्वमर्हस्युपेक्षितुम् ।।२।।
कौशल्या कल्पितंगेहे कानने लक्ष्मणार्पितम् ।
पम्पायां शवरीदत्तं भरद्वाजार्पितञ्चयत् ।।३।।
नवनीतं घृतं क्षीरं व्रजे यत्स्वयमर्जितम् ।
यद्दत्तं यज्ञपत्नीभिर्यन्महेन्द्रेण कल्पितम् ।।४।।
यदर्पितं कुचैलेन यद्यद्विदुर कल्पितम् ।
अन्यद्वा यद्यष्टिं ते नित्यमुक्तैर्निवेदितम् ।।५।।
नाथार्य यासुनाचार्य यतीश्वर समर्पितम् ।
त्वन्महिम्नोऽनुरूपं यत्त्वत्प्रियाणां च यत्प्रियम् ।।६।।

यथा तथा स्वसङ्कल्पात्कल्पयित्वेदमेवहि।
अतिप्रभूतमत्यन्तं भक्तिपूतं चतुर्विधम् ।।७।।
पथ्यं पाकविशेषाढ्यं रुच्यं दोषविवर्जितम् ।
दिव्यं दृष्टि प्रियं हृद्यं सरसं सौरभोत्तमम् ।।८।।
सर्वोपचारपूर्वं यत्सम्पाद्यं प्रेमपूर्वकम् ।
देव देव तदेतत्ते ददौ वरवरो मुनिः।।९।।
अतस्त्वद्विषयप्रीतिः प्रेरितः करुणानिधे।
अत्रैव सन्निधायत्वमखिलैस्सह भोक्तृभिः।।१०।।
अनन्यहृदये सम्यगासीनः परमासने।
श्रीमन्नारायणास्वामिन्नेतत्स्वीकर्त्तुमर्हसि।।११।।

अथ यथा शक्त्याष्टाक्षरं जप्त्वा ततः भगवत्प्रसादं लक्ष्म्यनन्तस्वाचार्येभ्यः समर्प्य भगवतः कर्पूरनीराञ्जनं कुर्य्यात् ततोऽधःस्थमन्त्रैः पुष्पाञ्जलिं कुर्य्यात् ॥

हरिः ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति शूरयः दिवीवचक्षुरात तं तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते विष्णोर्यत्परमं पदं पर्य्याप्ताऽअनन्तरापाय सर्वस्तोमोति रात्र्यं उत्तमं अहर्भवन्ति सर्वस्याप्त्यै सर्वस्य जित्यै सर्वमेव तेनाप्नोति सर्वं जयति हरिः ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥१॥ सुगन्धबल्ली शतपत्र जाती सुवर्ण चम्पा वकुलोद्भवानि। गृहाण देवेश मयार्पितानि प्रभो हरे श्रीतुलसीदलानि ॥२॥ हरिः ॐ अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देव मृत्विजं होतारं रत्न धातमम् ॥३॥ हरिः ॐ इषे त्वोर्जेत्वा वायवस्थोपायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयत् श्रेष्ठतमाय कर्म्मणे॥४॥ हरिः ॐ अग्न अयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये निहोता तत्सिवर्हिंषि॥५॥ हरिः ॐ शन्नो देवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये शंयो

अभिश्रवन्तु नः॥६॥ ॐ मित्यग्रे व्याहरेत् नम इति पश्चन्नारायणायेत्युपरिष्टात् ॥७॥ ॐ मित्येकाक्षरं नम इति द्वे अक्षरे नारायणायेति पञ्चाक्षराणि एतद्वैनारायणास्याष्टाक्षरं पदं.योहवै नारायणस्याष्टाक्षरं पदमध्येति अनुपप्लवः सर्वमायुरेति विन्दतेप्राजापत्यं रायस्तोषं गोपत्यं ततोऽमृतत्वमश्नुते ततोऽमृतत्वमश्नुत इति एवं वेदा इत्युपनिषद्॥८॥ अथातः समयाचारिकान्धर्म्मान् व्याख्यास्यामः। धर्म्मज्ञ समयः प्रमाणं वेदाश्चत्वारो वर्णा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रास्तेषां पूर्वः पूर्वोजन्मतः श्रेयान् । अथ कर्म्मण्याचाराद्यानि गृह्यन्ते उदकेनैव पूर्वपक्षाः पुण्याहेषु कार्य्याणि यज्ञोपवीतिना प्रदक्षिणम् ।

नमस्तमै वराहाय लीलयोद्धरते महीम् ।
खुर मध्यगतोयस्य मेरुः खड़ खड़ायते॥१॥
इच्छामोहिमहा वाहुंरघुवीरं महाबलम् ।
गजेन महता यान्तं रामंछत्रावृताननम् ॥२॥
तंदृष्ट्वा शत्रु हन्तारं महर्षीणां सुखावहम् ।
वभूवहृष्टा वैदेही भर्त्तारं परिषस्वजे॥३॥
एष नारायणः श्रीमान् वैकुण्ठ कृतकेतनः।
नागपर्य्यङ्कमुत्सृज्य ह्यागतो मथुरांपुरीम् ॥४॥
तमद्भुतं वालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मङ्गल शोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ॥५॥
महाह वैडूर्य्यं किरीट कुण्डलत्विषा परिष्वक्त सहस्र कुन्तलम् ।
उद्दाम काञ्च्यङ्गद कङ्कणादिभिर्विरोचमानं वसुदेवऐक्षत॥६॥
तासामाविरभूच्छौरिस् स्मयमान मुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्त्रग्वीसाक्षान्मन्मथ मन्मथः॥७॥

अहोवीर्य महोशौर्य महा बाहु पराक्रमम् ।
नारसिंहं परं देव महो बल महो बलम् ।।८।।
वैकुण्ठे तु परे लोकेश्रिया सार्द्धं जगत्पतिः।
आस्ते विष्णुरचिन्त्यात्मा भक्तैर्भागवतैः सह।।९।।
मायावीपरमानन्द स्त्यक्त्वा वैकुण्ठ मुत्तमम् ।
स्वामिपुष्करिणी तीरे रमयासहमोदते।।१०।।
मुक्तिदश्च मुमुक्षूणां सर्वेषां सर्वकामद
क्रीड़ार्थं'लोक रक्षार्थं वसाम्यत्रश्रिया सह।।११।।
वेंकटाद्रिसमं स्थानं व्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन।
वेंकटेशसमोदेवोनभूतो न भविष्यति।।१२।।
वपा परि मलोल्लास वासिताधर पल्लवम् ।
मुखं वरद राजस्य मुग्धस्मेर-मुपास्महे।।१३।।
फाल्गुने मासिपूर्णयामुत्तरेऽक्षेन्दुवासरे।
गोविन्दराजो भगवान्प्रादुरा सीन्महा मुनिः।१४।।
कस्तूरीकलितोर्ध्व पुण्ड्र तिलकं कर्णान्त लो ले क्षणं।
मुग्धस्मेरमनोहरा धर दलं मुक्ता किरीटोज्वलम् ।
पश्यन् मानस पश्यतोहर तरं पर्य्यायपंकेरुहं।
श्रीरङ्गाधिपतेः कदानु वदनं सेवेय भूय्योप्यहम् ।।१५।।
कदापुनः शङ्ख रथाङ्ग कल्पक ध्वजारविन्दांकुश वज्रलाञ्छनम्।
त्रिविक्रम त्वच्चरणाम्बुजद्वयं मदीय मूर्द्धानमलंकरिष्यति।।१६।।
अखिल भुवन जन्मस्थेम भङ्गादिलीले।
विनत विविध भूतव्रात रक्षैक दीक्षे।
श्रुति शिरसिविदीप्ते ब्रह्मणि श्रीनिवासे भवतु।
मम परस्मिन् शेमुषी भक्ति रूपा।।१७।।

पाराशर्य्य वचः सुधामुपनिषत् दुग्धाब्धि मध्योद्धृतां ।
संसाराग्नि विदीपन व्यग्र गत प्राणात्म संजीवनीम् ।
पूर्वाचार्य्य सुरक्षितां बहुमति व्याघात दूरस्थितामानीतांतु ।
निजाक्षरैः सुमनसो भौमाः पिबन्त्वन्वहम् ।।१८।।
(अत्रद्वयं) पितरं मातरं दारान् पुत्रान् वधून् सखीन् गुरून् ।
रत्नानि धन धान्यानि क्षेत्राणिचगृहाणिच।।१९।।
सर्व धर्मांश्च सन्त्यज्य सर्व कामांश्च साक्षरान् ।
लोकविक्रान्त चरणौ शरणं ते ब्रजं विभो।।२०।।
त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव ।।२१।।
पितासि लोकस्यचराचरस्य त्वमस्यपूज्यश्च गुरुगरीयान्।
नत्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिम प्रभावः ।।२२।।
तस्मात्प्रणम्य प्रणिधायकायं प्रसादयेत्वामहमीशमीड्यम्।
पितेवपुत्रस्यसखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि-देव सोढुम् ।।२३।।

मनोवाक्कायैरनादि काल प्रवृत्ताऽनन्तकृत्य करण कृत्याकरण भगवदपचारभागवतापचाराऽ सह्यापचार रूप नानाविधानन्तापचारानारब्ध कार्य्यानारब्ध कार्य्यान् कृतानक्रियमाणान् करिष्यमाणांश्च सर्वानशेषतः क्षमस्व अनादि काल प्रवृत्तं विपरीत ज्ञान मात्मविषयं कृत्स्नं जगद्विपयञ्च विपरीतं वृत्तञ्चाऽशेषविषयमद्यापिवर्त्तमानं वर्तिष्यमाणञ्चसर्वं क्षमस्व।।२४।। मन्दीयानादि काल प्रवाह प्रवृत्तां भगवत्स्वरूप तिरोधानकरीं विपरीतज्ञान जननीं स्वविषयाश्च भोग्यता बुद्धे र्जननीं देहेन्द्रियत्वेन सूक्ष्म रूपेण चावस्थितांदैवीं गुणमयीं मायांदासभूतंशरणगतोऽस्मि तवास्मिदास इति वक्तारं मांतारय।।२५।। विज्ञापनंयचदिद मद्यतु मामकीनमङ्गी कुरुष्व यतिराज दयाम्बुराशे। अज्ञोऽयमात्मगुणलेश विवर्जितश्च तस्मादनन्य शरणो भवतीतिमत्वा।।२६।। जयति सकल विद्यावाहिनी जन्म शैलो जनि पथ

परिवृत्ति श्रान्त विश्रान्त शाखी। निंखिल कुमति माया शर्वरी वाल सूर्यो निगम जलधिवेला पूर्ण चन्द्रो यतीन्द्रः॥२७॥ सुशंख चक्र लाच्छनं सद्धूर्ध्वपुण्ड्र मण्डितं सुकण्ठ लग्न सत्तुलस्यनर्घ्य पद्म मालिका। सितान्तरीय सोत्ततरीय यज्ञ सूत्र शोभिते ममाविरस्तु मान से गुरुस्तु वेङ्कटेस्वरः ॥२८॥ नमज्जनस्य चित्तभित्ति भक्ति चित्र तूलिका भवाहि भीर भञ्जने नरेन्द्र मन्त्र तन्त्रिणा। प्रपन्न लोक कैरव प्रसन्न चारु चन्द्रिका शठारि हस्त मुद्रिका हठाद्धिनोतु मे तमः ॥२९॥ ॐ भरताय परं नमस्तस्मै प्रथमो दाहरणाय भक्ति भाजां यदुपज्ञमशेषतः पृथव्यां प्रथितो राघव पादुका प्रभावः ॥३०॥ श्री नगर्य्यां महापुर्य्यां ताम्रपर्ण्युत्तरे तटे श्री तिन्तृणी मूलधाम्नि शठकोपाय मङ्गलम् ॥३१॥

एभिर्मन्त्रैः श्री तुलसीदलानि समर्पयेत्

हरिः ॐ केशवायनमः । ॐ नारायणाय नमः। ॐ माधवाय नमः। ॐ गोविन्दाय नमः। ॐ विष्णवे नमः । ॐ मधुसूदनाय नमः। ॐ त्रिविक्रमाय नमः। ॐ वामनाय नमः। ॐ श्रीधराय नमः। ॐ हृषीकेशाय नमः। ॐ पद्मनाभाय नमः। ॐ दामोदरायनमः विस्तरेण चेत् एभिर्मन्त्रैः श्रीतुलसीदलसमर्पणङ्कुर्य्यात् ॥

१. ॐकृष्णाय नमः, २. ॐ कमलानाथाय नमः ३. ॐ वासुदेवाय नमः ४. ॐ सनातनाय नमः ५. ॐ वासुदेवात्मजाय नमः ६. ॐ पुण्याय नमः ७. ॐ लीलामानुषविग्रहाय नमः ८. श्री श्रीवत्सकौस्तुभधराय नमः ९. ॐ यशोदावत्सलाय नमः १०. ॐ हरयेनमः ११. ॐ चतुर्भुजात शङ्खगदा खड्गाद्युदायुधाय नमः १२. ॐ देवकीनन्दनाय नमः १३. ॐ श्रीशाय नमः १४. नन्दगोपिप्रियात्मजाय नमः १५. ॐ यमुना वेगसंहारिणे नमः १६. ॐ बलभद्रप्रियानुजाय नमः १७. ॐ पूतनाजीवित हराय नमः १८. ॐ शकटासुरभञ्जनाय नमः १९. ॐ

नन्दब्रजजनानन्दने नमः २०. ॐ सच्चिदानन्द विग्रहाय नमः २१. ॐ नव नीतविलिप्ताङ्गाय नमः २२. ॐ नवनीत नटाय नमः २३. ॐ अनघाय नमः २४. ॐ नवनीत नवाहाराय नमः २५. ॐ मुचकुन्दप्रसादकाय नमः २६. ॐ षोडशस्त्रीसहस्रेशाय नमः २७. ॐ त्रिभङ्गललिताऽकृतये नमः २८. ॐ सुकवागमृताब्धीन्दवे नमः २९. ॐ गोविन्दाय नमः ३०. ॐ योगिनाम्पतये नमः ३१. ॐ वत्सवाटचराय नमः ३२. ॐ अनन्ताय नमः ३३. ॐ धेनुकासुरभञ्जनाय नमः ३४. ॐ तृणीकृत तृणावर्त्ताय नमः ३५. ॐ यमलार्जुन भञ्जनाय नमः ३६. ॐ उत्ताल ताल भेत्रे नमः ३७. ॐ तमालश्यामलाकृतये नमः ३८. ॐ गोप गोपीश्वराय नमः ३९. ॐ योगिने नमः ४०. ॐ कोटिसूर्य्यसमप्रभाय नमः ४१. ॐ इलापतये नमः ४२. ॐ परज्ज्योतिषे नमः ४३. ॐ यादवेन्द्राय नमः ४४. ॐ यदूद्वहाय नमः ४५. ॐबनमालि ने नमः ४६. ॐ पीतवाससे नमः ४७. ॐ पारिजाताऽपहारकाय नमः ४८. ॐ गोबर्द्धनाचलोद्धर्त्रे नमः ४९. गोपालायनमः ५०. ॐ सर्वपालकाय नमः ५१. ॐ अजाय नमः ५२. ॐ निरञ्जनाय नमः ५३. ॐकामजनकाय नमः ५४. ॐ कञ्जलोचनाय नमः ५५. ॐ मधुघ्नाय नमः ५६. ॐ मथुरानाथाय नमः ५७. ॐ द्वारिकानाथाय नमः ५८. ॐ वलिने नमः ५९. ॐ वृन्दावनान्त स्सञ्चारिणो नमः ६०. ॐ तुलसीदासभूषणाय नमः ६१. ॐ स्यमन्तकमणिहर्त्रे नमः ६२. ॐ नरनारायणात्मकाय नमः ६३. ॐ कुब्जाकृष्टाम्बरधराय नमः ६४. ॐ मायिने नमः ६५. ॐपरमपुरुषाय नमः ६६. ॐ मुष्टिकाऽसुरचाणूरमल्लयुद्ध विशारदाय नमः ६७. ॐ संसार वैरिणेनमः ६८. ॐ कंसारये नमः ६९. ॐ मुरारये नमः ७०. ॐ नरकान्तकाय नमः ७१. ॐ अनादि ब्रह्मचारिणे नमः ७२. ॐ कृष्णव्व्यसन कर्षकाय नमः ७३. ॐ शिशुपालशिरश्छेत्रे नमः ७४.

ॐ दुर्योधन कुलान्तकाय नमः ७५. ॐ विदुराऽक्रूरवरदाय नमः ७६. ॐ विश्वरूपप्रदर्शकाय नमः ७७. ॐ सत्यवाचे नमः ७८. ॐ सत्यसङ्कल्पाय नमः ७९. ॐ सत्यभामारताय नमः ८०. ॐ जयिने नमः ८१. सुभद्रापूर्वजाय नमः ८२. ॐ विष्णवे नमः ८३. ॐ भीष्म मुक्तिप्रदाय नमः ८४. ॐ जगद्गुरवे नमः ८५. ॐ जगन्नाथाय नमः ८६. वेणुनादविशारदाय नमः ८७. ॐ वृषभासुरविध्वंसिने नमः ८८. ॐ वाणासुरकरान्तकायनमः ८९. ॐ युष्ठिरप्रतिष्ठात्रे नमः ९०. ॐ वर्हिवर्हावतंसकाय नमः ९१. ॐ पार्थसारथये नमः ९२. ॐ अव्यक्तायानमः ९३. ॐ गीताऽमृत महोदधये नमः ९४. ॐ कालीयफणमणिक्यरञ्जितश्रीपदाम्बुजाय नमः ९५. ॐ दामोदराय नमः ९६. ॐ यज्ञभोक्त्रे नमः ९७. ॐ दानवेन्द्रविनाशकाय नमः ९८. ॐ नारायणायनमः ९९. ॐपरब्रह्मणे नमः १००. ॐ पन्नगाशनवाहनाय नमः १०१. ॐ जलक्रीडासमासक्तगोपीवस्त्राऽपहारकाय नमः १०२. ॐ पुण्यश्लोकाय नमः १०३. ॐ तीर्थपादाय नमः १०४. ॐ वेदवेद्याय नमः १०५. ॐ दयानिधये नमः १०६. ॐ सर्वतीर्थात्मकाय नमः १०७. ॐ सर्वग्रहरूपणि नमः १०८. ॐ परात्पराय नमः १०९. ॐ श्रीरुक्मिणी सत्यभामासमेत श्री गोपालस्वामिने नमः ११०. ॐ श्रीमते रामानुजाय नमः। १११. ॐ सर्व मंगलानुग्रहाय नमः।

नमः श्रियै लोकधात्र्यै ब्रह्ममात्रे नमो नमः। नमस्ते पद्मनेत्रायै पद्ममुख्यै नमो नमः १, प्रसन्न मुख पद्मायै पद्मकान्त्यै नमो नमः। नमो विल्ववनस्थायै विष्णु पत्न्यै नमो नमः २, विचित्रक्षौमधारिण्यै पृथुश्रोण्यै नमो नमः। पक्वविल्वफलापीन तुङ्गस्तन्यै नमो नमः ३, सरक्तपद्म पत्राभकरपादतले शुभे। संरक्ताङ्गदकेयूर काञ्चीनूपुरशोभिते ४, यक्षकर्दम संलिप्ता सर्वाङ्गे कनकोज्ज्वले। माङ्गल्याऽभरणैश्चित्रैर्मुक्ताहारैर्विभूषिते ५,

ताटङ्कैरवतंसैश्च शोभमानमुखाम्बजे। पद्म हस्ते नमस्तुभ्यं प्रसीद हरिवल्लभे ६, ऋग्यजुस्सामरूपायै विद्यायै ते नमो नमः। प्रसीदास्मान्कृपादृष्टि-पातैरालोकयाब्धिजे ७, नृत्य वाद्यादि गीतादि पुराणपठनादिभिः। राजो पचारैस्सकलैस्सन्तुष्टो भव राघव।

इतिपुष्पाञ्जलिः। अथनीरांजनम् ।।

श्रियः कान्ताय देवाय कल्याण निधयेऽर्थिनाम्।।१।।
श्री वैकुण्ठविवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ।।२।।
लक्ष्मीशविभ्रामालोल सभ्रू विभ्रमचक्षुषे।।
चक्षुषे सर्वलोकानां वेङ्कटेशाय मङ्गलम् ।।३।।
श्रीवैकुण्ठ विरक्ताय स्वामि पुष्करिणी तटे।।
रमया रममाणाय वेङ्कटेशाय मङ्गलम् ।।४।।
सुस्मिताय सुनासाय सुदृशे सुन्दरभ्रुवे।।
सुललाट किरीटाय रङ्गराजाय मङ्गलम् ।।५।।
कमला कुच कस्तूरी कर्दमाङ्कित वक्षसे।
यादवाद्रिनिवासाय सम्पत्पुत्राय मङ्गलम् ।।६।।
मङ्गलं कौशलेन्द्राय महनीय गुणात्मने।।
चक्रवर्ति तनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ।।७।।
श्री मद्गोपालवालाय गोदाऽभीष्टप्रदायिने।।
श्रीसत्या सहिताय तु कृष्णादेवाय मङ्गलम् ।।८।।
नीलाचलनिवासाय नित्याय परमात्मने।।
सुभद्राप्राणनाथाय जगन्नाथाय मङ्गलम् ।।९।।
मङ्गलाशासन परैः मदाचार्य पुरोगमैः।
सर्वैश्च पूर्वैराचार्य्यैः सत्कृतायास्तु मङ्गलम् ।।१०।।

अथ कर्पूरनीराञ्जनं विधाय, एभिर्मन्त्रैर्भगवन्तं शाययेत। ॐ जय जय नृसिंह नारायणानन्ततुभ्यम्।नमोभुजगेन्द्रशायिने सुखं

योगनिद्रास्तुते।।१।। पर्य्यङ्काशन मारुह्य रमया यह हे प्रभो। निद्रां कुरुष्व भगवन् सुदर्शन सुरक्षितः।।२।। क्षीरसागर तरङ्ग शीकरासार तारकित चारुमूर्त्तये। भोगि भोग शयनीय शायि माधवाय मधु विद्विषे नमः।।३।। अथउत्सवादिषु एभिर्मन्त्रैः पञ्चामृतस्नानम् ।।

ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्यस्कम्भसर्ज्जनीस्थो वरुणस्य ऋतसदन्मसि वरुणस्य ऋतसदन्मसि वरुणस्य ऋतसदनमासीत् ।।१।। इति वरुणस्नानम् जलस्नानम्।। ॐपयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयोदिव्यंतरिक्षे पयोध्याः पयस्वती प्रदिशः सन्तु मह्यम् ।।२।। इति पयसास्नानम् ।। ॐ दधिक्राब्णोऽअकारिषं जिष्णो रश्वस्य व्वाजिनः सुरभिनो मुखा करत्प्राणाऽआयूंᳫंषतारिषत् ।।३।। इति दध्नास्नानम् ।। ॐघृतं घृत पावनः पित्रतवसां वसापावानः पिवतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा दिशः प्रदिश आदिशो व्विदिश उद्दिशो दिग्भ्यः।।४।। इति घृतेनस्नानम् ।। ॐ मधुव्वाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवᳫं रजः। मधुःद्यौरस्तुनः पिता। मधु मान्नो वनस्पतिर्मधुमानस्तु सूर्य्यः माध्वीर्गावो भवन्तुनः।।५।। इति मधुनास्नानम।। ॐ अपांरसमुद्वसं सूर्य्ये सन्तं समाहितं अपां रसस्य यो रसस्तवोगृह्णाभ्युत्तम मुपयाय गृहीतोसीन्द्रायत्वाजुष्टं गृणाम्येषते योनिरीन्द्रयत्वजुष्टतमम् ।।६।। इति शर्करास्नानम् ।। ॐ सप्तते अग्ने सप्तसमिधः सप्त जिह्वा सप्तर्षयः सप्तधाम प्रियाणि सप्त होताः सप्तधात्वां यजन्ति सप्त योनीरामृणस्व घृतेन स्वाहा। इति सप्त जल स्नानम् ।। ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमभियन्ति सप्त श्रोतसः सरस्वतीतु पञ्चधासोदेशो भवत्सरित् । इति शुद्धोदकस्नानम। इति पञ्चामृत स्नानम् ।।

इति श्री भगवत्पूजन प्रकारः

श्रीमते रामानुजाय नमः

पञ्च संस्कार विधिः

आचमनाङ्गन्यास पूर्वकं प्राणायाम त्रयं कृत्वा, अद्येहेत्यादि सङ्कल्पं पूर्वं विधाय, शुद्धभूमिं दर्भैः परि समुह्य, तत्र तण्डुलान् प्रकीर्य्य, कुशेन त्रिरुल्लिख्य, तत्र दर्भं न्यस्य पञ्च गव्यं स्थापयेत् , तत्र क्रमः गोमूत्रंपूर्वे, दक्षिणे गोमयं, पश्चिमे पयः उत्तरे दधि, मध्ये घृत मीशाने कुशोदकम् । गोमूत्रे विष्णुं, गोमये ब्रह्माणं, दुग्धेऽच्युतं दध्नि कृष्णं, घृते सवितारं, प्रणवादि नमोन्तै स्तत्तन्नामभिः सम्पूज्य ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् इति विष्णु गायत्र्या, गोमूत्रम् । गन्धद्वारा दुराधर्षां नित्य पुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियमिति गोमयम्। आप्यायस्व समेतुते विश्वतस्सोम वृष्णियं भवा वाजस्य संगथेति क्षीरम्। दधिक्रावणो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः सुरभिणो मुखाकरत् प्राण आयूंषि तारिषदिति दधि। शुक्रमसि ज्योतिरसि तेजोसि देबोवः सवितउत्पुनात्यच्छिद्रेण पवित्रेण बसोः सूर्य्यस्य रस्मिभिरिति घृतम्। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेश्विनो र्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे इति कुशोदकम्। एवं पञ्चगव्यं कस्मिश्चित्पात्रे संगृह्य; आपोहिष्टेत्यालोड्य मानस्तोकेत्यनेना-भिमन्त्रयेत् , ततो परिसरं कुर्य्यात्। पर्ण पुटे तण्डुल सर्षप हरिद्रां ताम्बूल पूगी फल नारिकेल द्रव्ययुतं चतुर्गुणितं त्रिगुणितं वा सित सूत्रं पीतं वा निधाय मूलेनाभिमन्त्र्य, ॐ सुदर्शनाय हेतिराजाय हुँफडित्यस्त्र मुद्रां प्रदर्श्य स्थापयेत्। शुद्धायाँ भूमौ तण्डुलैश्चतुरस्त्रां प्रादेशमितां वेदीं निर्म्माय कुशेन प्राचीरुदीचीस्तिस्त्रतिस्त्रो रेखा उल्लिख्य उल्लेखनक्रमेणा-ङ्गुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां मृदमुद्धृत्यैशान्यामरत्रि मात्र देशे निरस्य तत्र दर्भंन्यस्य तदुपर्य्यब्रणं कलशं निधाय मूलेमन्त्रेणजलेनापूर्य्य मूलेनैव तुलसीं गन्धञ्च

निक्षिप्य ऊद्ध्वांग्रं कूर्चं पञ्च पल्लवं पञ्चरत्नानि श्रीफलं पूगी फलञ्च निधाय कण्ठे वस्त्रं वध्वा हरिद्रा कुङ्कमादिभिरालेप्य, तत्र श्रीभू नीला सहितं भगवन्तमावाह्य, दक्षिणवामयोः पार्श्वयोः सुदर्शनं पाञ्चजन्यं च स्थाप्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य, ॐ सुदर्शनाय हेतिराजाय नमः, ॐ पाञ्चजन्यायशङ्खाधिपतये नमः, इति सुदर्शनपाञ्चजन्यं सम्पूज्य देवस्य पश्चिमे भागे चतुरस्त्रं समं स्थण्डिलं निर्म्माय मूलेन कुशैस्सम्मार्ज्य स्त्रुवेण प्राचीरुदीचीस्तिस्त्रस्तिस्त्रो रेखा उल्लिख्योल्लेखन क्रमेणानामिकाङ्गुष्टाभ्यां मृदमुद्धृत्यैशान्यां प्रक्षिप्य, गोमयोदकेनोपलिप्य, प्रोक्ष्य तत्र दर्भं न्यस्याग्निस्थापनं कुर्य्यात् । ततोऽग्निमुद्बोध्याग्निं सम्पूज्य, दशवारमष्ठाक्षरं जप्त्वा, वैष्णवाग्निं विभाव्य वन्हेउद्बोधस्वेति उच्चारयन् त्रिराज्याहुतीर्हुत्वा पर्य्यग्नि करणं कृत्वा, दर्भाँश्चतुर्दिक्ष्वास्तरणं परिधीन्दिक्षु स्थापयेत्, वेद्याः पूर्वदिग्भागे समिद्वयं स्थापयेत्, मूलेनाग्निंषरिषिञ्च्य, मूलेनाग्नौद्वि समिधः प्रक्षिपेत् अग्नि मध्ये ॠतुस्नातया लक्ष्म्या सह भगवतः संयोगं विचिन्त्याहितगर्भां लक्ष्मीं ध्यात्वा तस्यामग्नेरुत्पत्तिं, विभावयेदेतदग्नेःवैष्णवीकरणम् । ततो मूलेन मन्त्ररत्नेन चरमेण च हुत्वा; सुदर्शन पाञ्चजन्य मन्त्राभ्यां च हुत्वा, आचार्य्योऽन्तेवासिनं पञ्चगव्यं प्राशयित्वा, अनेन, ॐ यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके। प्राशनात् पञ्च गव्यस्य दहत्वग्निरिवेन्धनम् । ततो रक्षां वघ्नीयादनेन, जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्व भावान। नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज। ततो दक्षिण भुजमूले सुदर्शनेनाङ्कयेदनेन, ॐ सुदर्शन महाज्वाल कोटि सूर्य्य समप्रभ अज्ञानान्धस्य मे देव विष्णोर्मार्गंम्प्रदर्शय। ॐ सुदर्शनाय हेतिराजाय नमः। ॐ पाञ्चजन्य निजध्वान ध्वस्त पातक सञ्चय। पाहिमां पापिनं घोरं संसारार्णव पातिनम्। पाञ्चजन्याय शङ्खाधिपतये नमः। ततः ऊद्ध्वं पुण्ड्रं कृत्वा भगवत्सम्बन्धि नामकरणं विधाय मन्त्रानुपदिशेत् । ततः शङ्खचक्रे पञ्चामृतेन स्नाप्य,

सम्पूज्य, गोदानं भूयसीञ्च कृत्वा भगवन्तमुद्वासयेत् । इति परम सक्षेपतः पञ्च संस्कारः विधिः।

श्री मंगला आरती

श्रियः कान्ताय देवाय, कल्याण निधयेऽर्थिनां।
श्रीवैकुण्ठनिवासाय, श्रीनिवासाय मंगलम् ।।१।।
लक्ष्मी सविभ्रमालोके, सुभ्रूविभ्रम चक्षुषे।
चक्षुषे सर्वलोकानां, वेंकटेशाय मंगलम् ।।२।।
श्री वैकुण्ठविरक्ताय, स्वामी पुष्करिणीतटे।
रमया रममाणाय, वेंकटेशाय मंगलम् ।।३।।
कमलाकुच कस्तूरी, कर्दमांकित वक्षसे।
यादवाद्रि निवासाय, संपत्पुत्राय मंगलम् ।।४।।
सुस्मिताय सुनासाय, सुदृशे सुंदर भ्रुवे।
सुललाट किरीटाय, रंगराजाय मंगलम् ।।५।।
मंगलं कौशलेन्द्राय, महनीय गुणाब्धये।
चक्रवर्ति तनूजाय, सार्वभौमाय मंगलम् ।।६।।
श्रीमद्गोपालवालाय, गोदाभीष्ट प्रदायिने।
श्रीसत्या सहितायास्तु, कृष्णदेवाय मंगलम् ।।७।।
नीलाचल निवासाय, नित्याय परमात्मने।
सुभद्राप्राणनाथाय, जगन्नाथाय मंगलम् ।।८।।
मंगलाशासनपरैर्मदाचार्य पुरोगमैः।
सर्वैश्चपूर्वैस्वाचार्यैः सत्कुतायास्तु मंगलम् ।।९।।

श्रियै नमः

त्रयोदश वाक्य

अस्मद्गुरुभ्यो नमः ॥१॥ अस्मत्परमगुरुभ्यो नमः॥२॥
अस्मत्सर्वगुरुभ्यो नमः ॥३॥ श्रीमतेरामानुजाय नमः ॥४॥
श्रीपरांकुशदासायनमः ॥५॥ श्रीमद्यामनुमुनये नमः ॥६॥
श्रीराममिश्राय नमः ॥७॥ श्रीपुण्डरीकाक्षायनमः ॥८॥
श्रीमन्नाथमुनये नमः ॥९॥ श्रीमते शठकोपाय नमः ॥१०॥
श्रीमते विश्वक्सेनाय नमः ॥११॥ श्रियैनमः ॥१२॥ श्रीधराय नमः

मूलमन्त्र -ॐ नमोनारायणाय

मन्त्रद्वय- श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमतेनारायणाय नमः।

चरमश्लोकः - सर्वधर्मान् परित्यज्यमामेकं शरणं व्रज। अहंत्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशु चः

श्री वेंकटेशसुप्रभातम्

कौशल्या सुप्रजा! राम पूर्वासन्ध्या प्रवर्त्तते। उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्तव्यं दैवमाह्निकम् ॥१॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठ गरुड़ध्वज। उत्तिष्ठ कमलाकान्त त्रिलोक्यामंगलं कुरु॥२॥ मातः समस्तजगतां मधुकटभारेर्वक्षोविहारिणि मनोहरदिव्यरूपे। श्रीस्वामिनि श्रितजन प्रियदानशीले श्रीवेंकटेशदयिते तव सुप्रभातम् ॥३॥ तव सुप्रभातमरर्बिंदलोचने भवतु प्रसन्नमुख चंद्रमण्डले। विधिशंकरेंद्रवनिताभिरर्चिते वृषशैलनाथदयिते दयानिधे॥४॥ अत्र्यादिशप्तऋषयस्समुपास्य संध्यामाकाशसिंधुकमलानि मनोहराणि। आदाय पादयुगमर्चयितुं प्रसन्नाः शेषाद्रिशेखरविभो तव सुप्रभातम्

॥५॥ पञ्चाननाब्जभवषणमुखवासवाद्यास्त्रैविक्रमादिचरितं विबुधाः स्तुवन्ति।
भाषापतिः पठति वासरशद्धिमारात् शेषाद्रिशेखरविभो तव सुप्रभातम्
॥६॥ ईषत्प्रफुल्लसरसांरुहनारिकेलपूगद्रुमादिसुमनोहरपालिकानाम् । आयाति
मन्दमनिलः सह दिव्यगन्धः शेषाद्रिशेखर विभो तव सुप्रभातम् ॥७॥
उन्मील्य नेत्रयुगमुत्तमपञ्जरस्थाः पात्रावशिष्ट कदलीफलपायसानि।
भुक्त्वासलीलमथ केलिशुकाः पठन्ति शेषाद्रिशेखर विभो तव सुप्रभातम्
॥८॥ तंत्रीप्रकर्षमधुरस्वनया विपंच्या गायत्यनन्तचरितं तव नारदोऽपि
भाषासमग्रमधुकृत्कर चारुरम्यान् शेषाद्रिशेखर विभो तव सुप्रभातम् ॥९॥
भृङ्गावली च मकरन्दरसानुविद्धझङ्कारगीतनिनदैः सह सेवनाय।
निर्यात्युपान्तसरसीकमलोदरेभ्यः शेषाद्रिशेखरविभो तव सुप्रभातम् ॥१०॥
योषागणेन वरदध्नि विमथ्यमाने घोषालयेषु दधिमन्थनतीव्रघोषाः। रोषात्कलिं
विदधते ककुभश्च कुम्भाः शेषाद्रिशेखर विभो तव सुप्रभातम् ॥११॥
पद्मेशमित्र! बहुपत्रकृतालिवर्गा हर्तुं श्रियं कुवलयस्य सितारुणांगाः।
भेरीनिनादमिव बिभ्रति तीव्रघोषं शेषाद्रिशेखर विभो तव सुप्रभातम् ॥१२॥
श्रीमन्नभीष्टवरदाखिललोकबन्धो श्री श्रीनिवास जगदेकदयैकसिन्धो।
श्रीदेवतागृहभुजान्तर दिव्यमूर्ते श्रीवेंकटाचलपते तव सुप्रभातम॥१३॥
श्रीशेषशैलगरुड़ाचल वेंकटाद्रिनारायणाद्रिवृषभाद्रिवृषाद्रिमुख्यान् । आख्यां
तवादिबसतेरनिशं वदन्ति श्रीवेंकटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥ १४॥
श्रीस्वामिपुष्करिणिकाप्लवनिर्मलांगाः श्रेयोर्थिनोहरविरिंचिसनन्दनाद्याः ।
द्वारे वसंति वरवेत्रहतोत्तमांगाः श्रीवेंकटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥१५॥
सेवापराः शिवसुरेशकृशानधर्मरक्षोम्बुनाथपवमानधनाधिनाथाः।
बद्धाञ्जलिप्रविलसन्निजशीर्षदेशा श्रीवेंकटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥१६॥
घाटीषु ते विहगराजमृगाधिराजन्नागाधिराजगजराजहयाधिराजाः।
स्वस्वाधिकारमहिमाधिकमर्थयन्ति श्रीवेंकटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥१७॥
सूर्येन्दुभौमबुधवाक्पतिकाव्यसौरिस्वर्भानुकेतुदिविषत्परिषत्प्रधानाः।

त्वद्दासदासचरमावधि दास-दासाः श्रीवेंकटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥१८॥
त्वत्पादधूलिभरितस्फुरितोत्तमांगा स्वर्गापवर्गनिरपेक्ष-निजान्तरंगाः
कल्पागमाकलितयाकलितां लभन्ते श्रीवेंकटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥१९॥
त्वद्गोपुराग्रशिखराणि निरीक्षणमाणाः स्वर्गापवर्गपदवीपदमाश्रयन्तो। मर्त्या
मनुष्यभवने मतिमाश्रयंते श्रीवेंकटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥२०॥
श्रीभूमिनायक दयाद्विगुणामृताब्धे देवाधिदेव जगदेकशरणयमूर्ते
श्रीमन्ननन्तगरुडादिभिरचितांध्रे श्रीवेकटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥२१॥
श्रीपद्मनाभपुरुषोत्तम वासुदेव बैकुण्ठ माधव जनार्दन चक्रपाणे। श्रीवत्सचिह्न
शरणागतपारिजात श्रीवेंकटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥२२॥ कन्दर्पदर्प
सुन्दरदिव्यमूर्त्तेकान्ताकुचाम्बुरुहकुड्मललीनदृष्टे। कल्याणनिर्मलगुणाक
दिव्यकीर्त्ते श्रीवेंकटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥२३॥ मीनाकृ
कमठकोलनृसिंहवर्णिन् स्वामिन्परश्वधतपोधन रामचन्द्र। शेषांशराम यदुनन्द
कल्किरूप, श्रीवेंकटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥ २४॥
एलालवंगघनसारसुगन्धतीर्थं दिव्यं वियत्सरसि हेमघटेषु पूर्णम् ॥ धृत्वा
वैदिकशिखामणयः प्रहर्षात्तिष्ठन्ति वेंकटपते तव सुप्रभातम् ॥२५
भास्वानुदेति विकचानि सरोरुहाणि सम्पूरयन्ति निनदः ककुभो विहंग
श्रीवैष्णवाः सततमंगलमर्थितास्ते धामाश्रयन्ति तव वेंकट सुप्रभातम् ॥२६
ब्रह्मादयः शिवसुरेशमहर्षयस्ते सन्तस्सनन्दनमुखास्त्वथ योगिवर्याः। धमान्ति
तव हि मंगलवस्तुहस्ताः श्रीवेंकटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥२७॥ लक्ष्मीनिवा
निरवद्यगुणैकसिन्धो संसार सागरसमुत्तरणैकसेतो। वेदान्तवे
निजवैभवभक्तभोग्य श्रीवेंकटाचलपतेरिह सुप्रभातम् ॥२८॥ इत्थं वृषाचलप
तव सुप्रभातं, ये मानवाः प्रतिदिनं पठितुं प्रवृत्ताः॥ तेषां प्रभातसम
स्मृतिरंगभाजां, प्रज्ञां परार्थसुलभां परमां प्रसूते ॥२९॥ इति श्रीवेंकटे
सुप्रभातं सम्पूर्णम् ॥

नित्याऽनुसन्धेयपाठः

सर्वदेशदशाकालेष्वव्याहतपराक्रमा।
रामानुजार्यदिव्याज्ञा बर्द्धतामभिवर्द्धताम् ।।१।।
रामानुजार्यदिव्याज्ञा प्रतिवासरमुज्वला।
दिगन्तव्यापिनी भूयात् सा हि लोकहितैषिणी ।।२।।
श्रीमन्नः श्रीरंग श्रियमनुप्रदवामनुदिनंसंवर्द्धय।
श्रीमन्नः श्रीरंग श्रियमनुपद्रवामनुदिनंसंवर्द्धय।।३।।
नमः श्रीशैलनाथाय कुन्तीनगरजन्मने।
प्रसादलब्ध परमप्राप्य कैंकर्यशालिने।।४।।
श्रीशैलेशदयापत्रं धीभक्तयादिगुणार्णवम् ।
यतीन्द्रप्रवणं वन्दे रम्यजामातरं मुनिम् ।।५।।
लक्ष्मीनाथसमारम्भां नाथयामुनमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ।।६।।
योनित्यमच्युतपादाम्बुजयुग्म रुक्म
व्यामोहतस्तदितराणि तृणायमेने।
अस्मद् गुरोर्भगवतोस्यदयैकसिन्धो
रामानुजस्यचरणौशरणं प्रपद्ये।।७।।
मातापितायुवतयस्तनयाविभूतिः
सर्वं यदेव नियमेन मदन्वयानाम् ।
आद्यस्य नः कुलपतेर्वकुलाभिरामं
श्रीमत्तदंघ्रियुगलंप्रणमामि मूर्ध्ना।।८।।

भूतंसरश्च महदाह्वयभट्टनाथ
श्रीभक्तिसारकुलशेखरयोगिवाहान् ।
भक्तांघ्रिरेणुपरकालयतीन्द्रमिश्रान्
श्रीमत्परांकुशमुनिं प्रणतोस्मि नित्त्यम् ।।९।।
गुरुमुखमनधीत्य प्राह वेदानशेषान्
नरपतिपरिक्लृप्तं शुल्कमादातुकामः ।
श्वसुरममरवन्द्यं रंगनाथस्यसाक्षाद्
द्विजकुलतिलकं तं विष्णुचित्तं नमामि।।१०।।
अस्मद्देशिकमस्मदीयपरमाचार्यानशेषान् गुरुन्,
श्रीमल्लक्ष्मण योगिपुङ्गमहामापूर्णौ मुनिं यामुनम् ।
रामं पद्मविलोचनं मुनिवरं नाथं शठद्वेषिणं,
सेनेशं श्रियमिन्दिरासहचरं नारायणं संश्रये।।

अथवरदवल्लभास्तोत्रम् ।

कान्तस्ते पुरुषोत्तमः फणिपतिः शय्यासनं वाहनं
वेदात्मा विहगेश्वरो यवनिका माया जगन्मोहिनी।
ब्रह्मे शादिसुरव्रजः सदयितस्त्वदासदासीगणः
श्रीरित्येव च नाम ते भगवति ब्रूमः कथं त्वां वयम् ।।१।।
यस्यास्ते महिमानमात्मन इव त्वद्वल्लभोऽपिप्रभु-
र्नालंमातुमियत्तया निरवधिं नित्यानुकूलं स्वतः।
तां त्वां दास इति प्रपन्न इति च स्तोष्याम्यहं निर्भयो
लोकैकेश्वरि लोकनाथदयिते दान्ते दयान्ते विदन् ।।२।।

ईषत्त्वत्करुणानिरीक्षणसुधासन्धुक्षणाद्रक्ष्यते।
नष्टंप्राक्तदलाभतस्त्रिभुवनं संप्रत्यनन्तोदयम् ।
श्रेयो नह्यरविन्दलोचनमनः कान्ताप्रसादादृते
संसृत्याक्षर वैष्णवांध्वसु नृणां सम्भाव्यते कर्हिचित् ।।३।।
शान्तानन्तमहाविभूतिपरमं यद्ब्रह्मरूपं हरे-
मूर्तं ब्रह्म ततोऽपि यत्प्रियतरं रूपं यदत्यद्भुतम् ।
यान्यान्यानि यथासुखं बिहरतो रूपाणि सर्वाणिता-
न्याहुस्वैरनुरूपरूपविभवैर्गाढोपगूढानिते।।४।।
आकारत्रयसंपन्नामरविन्दनिवासिनीम् ।
अशेषजगदीशित्रीं बन्दे वरदवल्लभाम् ।।५।।

अथ पञ्चधाटी

पाषण्डद्रुमषण्डदावदहनश्चार्वाकशैलाशनि-
बौर्द्धध्वान्तनिरासवासरपतिर्जैनेभकण्ठीरवः।
मायावादिभुजङ्गभग्नगरुडस्त्रैविद्यचूडामणिः
श्रीरङ्गेशजयध्वजो विजयते रामानुजोऽयं मुनिः।।१।।
पाषण्डषण्डगिरिखण्डनवज्रदण्डाः
प्रच्छन्नबौद्धमकरालयमन्थदण्डाः।
वेदार्थसारसुखदर्शनदीपदण्डा
रामानुजस्य विलसन्ति मुनेस्त्रिदण्डाः।।२।।
चारित्रोद्धारदण्डं चतुरनयपथालंक्रियाकेतुदण्डं
सद्विद्यादीपदण्डं सकलकलिकथा संहृते कालदण्डम् ।

त्रय्यंतालम्बदण्डंत्रिभुवनविजयच्छत्रसौवर्णदण्डम्
धत्ते रामानुजार्यः प्रतिकथकशिरोबज्रदंडं त्रिदंडम् ।।३।।
त्रय्या मागल्यसूत्रं त्रियुगयुगपथारोहणालम्बसूत्रं
सद्विद्यादीपसूत्रं सगुणनयपथासंपदां हारसूत्रम् ।
प्रज्ञासूत्रं बुधानां प्रशमधनमनः पद्मिनीनालसूत्रं
रक्षासूत्रं यतीनां जयति यतिपतेर्वक्षसि ब्रह्मसूत्रम् ।।४।।
पाषण्डसागर महावडवामुखाग्निः
श्रीरंगराज चरणाम्बुजमूलदासः।
श्रीविष्णुलोकमणिमण्डपमार्गदायी
रामानुजो विजयते यतिराजराजः।।

श्रीरामानुजस्तुतिः

श्रीरङ्गमङ्गलनिधिं करुणानिवासं श्रीवेङ्कटाद्रिशिखरालयकालमेघम्।
श्रीहस्तिशैलशिखरोज्वलपारिजातं श्रीशंनमामिशिरसायदुशैलदीपम्।
भक्तामृतं विश्वजनानुमोदनं सर्वार्थदं श्रीशठकोप वाङ्मयम् ।
सहस्त्रशाखोपनिषत्समागमं नमाम्यहं द्राविड़ वेदसागरम् ।।१।।
श्रीरङ्गमङ्गलमहोत्सववर्धनाय वेदान्तपन्थपरमार्थसमर्थनाय।
कैङ्कर्यलक्षणविलक्षणमोक्षभाजो रामानुजोविजयतेयतिराजराजः।।२।।
नमामि रामानुज पादपङ्कजम् वदामि रामानुजनामनिर्मलम् ।
स्मरामि रामानुज दिव्यविग्रहं करोमि रामानुजदासदास्यताम् ।।३।।
रामानुजस्य पदपङ्कजमाश्रयामि रामानुजस्य करुणामनुसंदधामि।
रामानुजस्यजनपादरजो बहामि रामानु जायनमइत्यनिशंवदामि।।५।।

बौद्धान्धकारपरिहारदिवाकराय श्रीवैष्णवाम्बुनिधिपूर्णनिशाकराय।
अद्वैतवादिकरियूथमृगाधिपाय तस्मैनमोऽस्तुसततंयतिपुङ्गवाय।।६।।
काषायशोभिकमनीयशिखानिवेशं दण्डत्रयोज्ज्वलकरं विमलोपवीतम्।
उद्यद्दिनेशनिभमुल्लसदूर्ध्वपुण्ड्रंरूपतवास्तुयतिराजदृशोर्ममाग्रे।।७।।

५- नित्त्य पाठ्य-गुरुपरम्परा

श्री गर्गान्वयपद्मसूर्यमपरं विद्यार्थि विद्याप्रदं
गोविन्दाचार्यपदाब्जप्रेममधुपं श्रीवैष्णवैस्सेवितम्
श्रद्धालुं परमार्थभूषणपथे भक्तिप्रपत्तिप्रभुं
वन्दे श्रीपुरुषोत्तमं गुरुवरं स्वाचार्य सेवारतम् ।।१।।
श्रीकाश्यपान्वय पयोनिधि पूर्णचन्द्रं
गोविन्दसूरिपदपंकजभृंगराजम्
श्रीद्वारिकेशतनुजार्तहरिप्रपन्नं
वेदान्तिनं गुरुवरं सततं भजामि।।२।।
श्रीशाण्डिल्यकुलोदधीन्दुमनघं वेदान्तविद्यार्णवम्
श्रीलक्ष्मीशकृपावलं परिवृतं शिष्यैरुपेन्द्रात्मजम्।
श्रीगोविन्दपदाब्जभृङ्गमनिशं विद्वद्वरैः सेवितम्
सीताराममहं भजे गुरुवरं स्वाचार्यसेवारतम् ।।३।।
गर्गार्यवंश जलधीन्दुमनन्तभाजं,
श्रीरामसूरिपदवारिज भृङ्गराजम्।
श्रीरङ्गयोगिसुचरित्रसुधावलेहं,
गोविन्ददेशिकमुदारमतिं भजेऽहम् ।।४।।

श्रीकान्यकुब्ज कुलवारिविपूर्णचन्द्रं
श्रीरामदेशिकपदाम्बुजभृङ्गराजम् ।
श्रीमन्नृसिंह पदपङ्कजचञ्चरीकं,
श्रीमाधवं गुरुवरं सततं भजामि।।५।।
श्रीव्यासगोत्रकुलवारिधिपूर्णचन्द्रं,
श्रीरङ्गदेशिकपदाब्ज रसैकभृङ्गम् ।
श्रीमच्छठारिकृपयाप्तसमस्तबोधं,
श्रीरामदेशिकमहं शरणं प्रपद्ये।।६।।
श्रीमद्बाधूलवंशामृतजलधिविधुं रङ्गाराजार्यसूरे
पौत्रं श्रीश्रीनिवासाह्वयगुरुतनयं तत्पदाम्भोजभृंगम् ।
श्रीमच्छ्रीशैलरामावरजयतिपतेः पादपाथोजशक्तं,
श्रीरंगार्य्य गुरूणां गुरुमहमनिशं शान्तचित्तं भजामि।।७।।
वाधूलवंशकलशाम्बुधिशीतभानुं,
श्रीरंगराजगुरुवर्य्यतनूजरत्नम् ।
तत्पाददिव्यसरसीरुहचञ्चरीकं,
श्री श्रीनिवासगुरुवर्य्यमहं प्रपद्ये।।८।।
वाधूलवंशकलाशाम्बुधि-पूर्णचन्द्रं,
श्री श्रीनिवासगुरुवर्य्यपदाब्जभृंगम् ।।
श्रीवाससूरि-तनयं विजयोज्जबलन्तं,
श्री रंगदेशिकमहं शरणंप्रपद्ये।।७।।

मङ्गल पाठः

श्रीमते रम्यजामातृमुनीन्द्राय महात्मने।
श्री रङ्गवासिने भूयान् नित्त्यश्रीर्नित्य मङ्गलम्।।
मङ्गलं यतिराजाय श्रीभाष्यामृतदायिने।
सौलभ्यपरिपूर्णाय महापूर्णाय मङ्गलम् ।
जयति यतिराज फणिराज अवतारमणे
प्रबल पाषण्डतमहरणभानोबिजयी भव विजयी भव।।

जयति वाधूल कुल कमल दिनकर बिभो आश्रितदुःखदमन श्रीरङ्गसूरे विजयी भव विजयी भव।

श्री श्रीस्तवः

स्वस्ति श्रीर्दिशतादशेषजगतां सर्गोऽपवर्गस्थितीः, स्वर्गं दुर्गतिमापबर्गिकपदं सर्वं च कुर्वन् हरिः।। यस्या वीक्ष्य मुखं तदिंगितपराधीनो विधत्तेऽखिलं क्रीडेयं खलु नान्यथाऽस्य रसदा स्यादेकरस्यात्तया।।१।। हे श्रीर्देवि समस्तलोक जननीं त्वां स्तोतुमीहामहे, युक्तां भावय भारतीं प्रगुणय प्रेमप्रधानां धियम्। भक्तिं वर्धय नंदयाश्रितमिमं दासं जनं तावकं, लक्ष्यं लक्ष्मि कटाक्षवीचिविसृतेस्ते स्याम चामीवयम् ।।२।। स्तोत्रं नाम किमामनन्ति कवयो यद्यन्यदीयान् गुणानन्यत्रत्वसतोऽधिरोप्य भणितिः सा तर्हि बन्ध्या त्वयि। सम्यक्सत्यगुणाभिवर्णानमथो ब्रूयुः कथं तादृशी, वाग्वाचस्पतिनापि शक्यरचना त्वत्सद्गुणार्णोनिधौ।।३।। ये वाचा मनसा च दुर्ग्रहतया ख्याता गुणास्तावकास्तानेव प्रति साम्बुजिह्विवमुदिता यन्मामिका भारती। हास्यं तत्तु न मन्महे नहि चकार्येकाखिलां चन्द्रिकां नालं पातुमिति प्रगृह्य रसनामासीत सत्यां तृषि।।४।। क्षोदीयानपि दुष्टुद्धिरपि निःस्नेहोऽप्यनीहोऽपि ते कीर्तिं देवि लिहन्नहन च बिभेम्यज्ञो न जिहेमि च।। दुष्येत्सा तु न

तावता नहि शुनालीढाऽपि भागीरथी, दुष्येच्छ्रवापि न लज्जते न च बिभेत्यार्तिंस्तु शाम्येच्छुनः ॥५॥ ऐश्वर्य महदेव वाल्पमथवा दृश्येत पुंसां हि यत्तल्लक्ष्म्याः समुदीक्षणात्तव यतः सार्वत्रिकं वर्तते। तेनैतेन न विस्मयेमहि जगन्नाथोऽपि नारायणो, धन्यं मन्यत ईक्षणात्तव यतः स्वात्मानमात्येश्वरः॥६॥ ऐश्वर्यं यदशेषपुंसि यदिदं सौन्दर्य्यलावण्ययो रूपं यच्च हि मंगलं किमपि यल्लोके सदित्युच्यते॥ तत्सर्वं त्वदधीनमेव हि यतः श्रीरित्यभेदेन वा यद्वा श्रीमदिति दृशेन वचसा देविप्रथामश्नुते॥७॥ देवि त्वन्महिमावधिर्न हरिणा नापि त्वया ज्ञायते यद्यप्येवमथापि नैव युवयोः सर्वज्ञता हीयते॥ यन्नास्त्येव तदज्ञतामनुगुणां सर्वज्ञताया विदु र्व्योमाम्भोजभिदन्तया खलु विदन् भ्रान्तोऽयमित्युच्यते॥८॥ लोके वनस्पतिवृहस्पतितारतम्यं यस्याः कटाक्षपरिणाममुदाहरंति॥ सा भारती भगवती तु यदायदासी तां देवदेवमहिषीं श्रियमाश्रयामः॥९॥ यस्याः कटाक्षमृदुवीक्षणवीक्षणेन सद्यस्समुल्लसितपल्लवमुल्ललास॥ बिश्वं विपर्ययसमुत्थविपर्ययं प्राक् तान्देव देवमहिषीं श्रियमाश्रयामः ॥१०॥

अथ आलवन्दार स्तोत्रम् ।

स्वादयन्निह सर्वेषां त्रय्यन्तार्थं सुदुर्ग्रहम् ।
स्तोत्रयामास योगीन्द्रस्तं वन्दे यामुनाह्वयम् ॥१॥
नमो नमो यामुनाय यामुनाय नमो नमः।
नमो नमो यामुनाय यामुनाथ नमो नमः॥२॥
नमो यामुनपादाब्जरेणुभिः पावितात्मने।
विदिताऽखिलवेद्याय गुरवे विदितात्मने॥३॥
नमोऽचिन्त्याद्भुताऽक्लिष्टज्ञानवैराग्यराशये।
नाथाय मुनयेऽगाधभगवद्भक्तिसिन्धवे॥४॥

तस्मै नमो मधुजिदङ्घ्रिसरोजतत्त्व-
ज्ञानाऽनुरागमहिमाऽतिशयान्तसीम्ने।
नाथाय नाथमुनयेऽत्र परत्र चाऽपि
नित्यं यदीयचरणौ शरणं मदीयम् ।।५।।
भूयो नमोऽपरिमिताच्युतभक्तितत्त्व-
ज्ञानामृताऽब्धिपरिवाहशुभैर्वचोभिः।
लोकेऽवतीर्णपरमार्थसमग्रभक्ति-
योगाय नाथमुनये यमिनांवराय।।६।।
तत्त्वेन यश्चिदचिदीश्वरतत्स्वभाव-
भोगाऽपवर्ग तदुपायगतीरुदारः।
सन्दर्शयन्निरमिमीत पुराणरत्नं
तस्मै नमो मुनिवराय पराशराय।।७।।
माता पिता युवतयस्तनया विभूतिः
सर्वं यदेव नियिमेन मदन्वयानाम् ।
आद्यस्य नः कुलपतेर्वकुलाभिरामं
श्रीमत्तदङ्घ्रियुगलं प्रणमामि मूर्ध्ना।।८।।
यन्मूर्ध्नि मे श्रुतिशिरस्सु च भाति यस्मिन्
अस्मन्मनोरथपथः सकलः समेति।
स्तोष्यामि नः कुलधनं कुलदैवतं तत्
पादारविन्दमरविन्दविलोचनस्य।।९।।
तत्त्वेन यस्य महिमार्णविशीकराणुः
शक्यो न मातुमपि शर्वपितामहाद्यैः।

कर्तुं तदीयमहिमस्तुतिमुद्यताय
मह्यं नमोऽस्तु कवये निरपत्रपाय।।१०।।
यद्वाश्रमावधि यथामति वाप्यशक्तः
स्तौम्येवमेव खलु तेऽपि सदा स्तुवन्तः।
वेदाश्चतुर्मुखमुखाश्च महार्णवान्तः
को मज्जतोरणकुलाचलयोर्विशेषः।।११।।
किञ्चैष शक्त्यतिशयेननु तेऽनुकम्प्यः
स्तोताऽपि तु स्तुतिकृतेन परिश्रमेण।
तत्र श्रमस्तु सुलभो मम मन्दबुद्धे
रित्युद्यमोयऽमुचितो मम चाब्जनेत्र।।१२।।
नाऽवेक्षसे यदि ततो भुवनान्यमूनि
नालं प्रभो भवितुमेव कुतः प्रवृत्तिः।
एवं निसर्गसुहृदि त्वयि सर्वजन्तो
स्वामिन्न चित्रमिदमाश्रितवत्सलत्वम् ।।१३।।
स्वाभाविकाऽनवधिकाऽतिशयेतितृत्वं
नारायण! त्वयि न मृष्यति वैदिकः कः?
ब्रह्मा शिवः शतमखः परमस्वराडि-
त्येतेऽपि यस्य महिमार्णवविप्रुषस्ते।।१४।।
कः श्रीः श्रियः परमसत्वसमाश्रयः कः ?
कः पुण्डरीकनयनः ? पुरुषोत्तमः कः ?
कस्याऽयुतायुत-शतैक- कलांशकांशे
विश्वं विचित्रचिदचित् प्रविभागवृत्तम् ।।१५।।

वेदाऽपहार-गुरुपातकदैत्यपीडा-
द्यापद्विमोचनमहिष्ठफलप्रदानैः।
कोऽन्यः प्रजा पशुपतिः परिपाति कस्य-
पादोदकेन स शिवः स्वशिरोधृतेन।।१६।।
कस्योदरे हरविरंचिमुखः प्रपञ्चः
को रक्षतीममजनिष्ट च कस्य नाभेः।
क्रान्त्वा निगीर्य पुनरुद्गिरति त्वदन्यः
कः केन चैष परवानिति शक्यशङ्कः।।१७।।
त्वां शीलरूपचरितैः परमप्रकृष्ट-
सत्वेन सात्विकतया प्रबलैश्च शास्त्रैः।
प्रख्यातदैवपरमार्थविदां मतैश्च
नैवाऽऽसुरप्रकृतयः प्रभवन्ति बोद्धुम् ।।१८।।
उल्लङ्घितत्रिविधसीमसमातिशायि-
सम्भावनं तव परब्रढिमस्वभावम् ।
मायाबलेन भवताऽपि निगूह्यमानं
पश्यन्ति केचिदनिशं त्वदनन्यभावाः।।१९।।
यदण्डमण्डान्तरगोचरञ्च यद् -
दशोत्तराण्यावरणानि यानि च।
गुणाः प्रधानं पुरुषः परम्पदं
परात्परं ब्रह्म च ते विभूतयः।।२०।।
वशी वदान्यो गुणवानृजुः शुचि-
र्मृदुर्दयालुर्मधुरः स्थिरः समः।

कृती कृतज्ञस्त्वमसि स्वभावतः
समस्तकल्याणगुणामृतोदधिः।।२१।।
उपर्य्युपर्यब्जभुवोऽपि पूरुषान्
प्रकल्प्य ते ये शतमित्यनुक्रमात्।
गिरस्त्वदेकैकगुणाऽवधीप्सया
सदा स्थिता नोद्यमतोऽतिशेरते।।२।।
त्वदाश्रितानां जगदुद्भवस्थिति-
प्रणाशसंसार-विमोचनादयः।
भवन्ति लोलाविधयश्च वैदिका-
स्त्वदीयगम्भीरमनोऽनुसारिणः।।२३।।
नमो नमो वाङ्मनसाऽतिभूमये
नमो नमो वाङ्मनसैकभूमये।
नमो नमोऽनन्त महाविभूतये
नमो नमोऽनन्तदयैकसिन्धवे।।२४।।
न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी
न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्यं
त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये।।२५।।
न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके
सहस्रशो यन्न मया व्यधायि।
सोहं विपाकावसरे मुकुन्द!
क्रन्दामि सम्प्रत्यगतिस्तवाग्रे।।२६।।

निमज्जतोऽनन्त भवार्णवान्त-
श्चिराय मे कूलमिवासि लब्धः।
त्वयाऽपि लब्धं भगवन्निदानी-
मनुत्तमं पात्रमिदं दयायाः।।२७।।
अभूतपूर्वं मम भावि किं वा!
सर्वं सहे मे सहजं हि दुःखम् ।
किन्तु त्वदग्रे शरणागतानां
पराभवो नाथ! न तेऽनुरूपः।।२८।।
निरासकस्याऽपि न तावदुत्सहे
महेश! हातुं तव पादपङ्कजम् ।
रुषा निरस्तोपि शिशुः स्तनन्धयो
न जातु मातुश्चरणौ जिहासति।।२९।।
तवामृतस्यन्दिनि पादपङ्कजे
निवेशितात्मा कथमन्यदिच्छति।
स्थितेऽरविन्दे मकरन्दनिर्भरे
मधुव्रतो नेक्षुरकं हि वीक्षते।।३०।।
त्वदङ्घ्रिमुद्दिश्य कदापि केनचिद्
यथा तथा वापि सकृत्कृतोऽञ्जलिः।
तथैव मुष्णात्यशुभान्यशेषतः
शुभानि पुष्णाति न जातु हीयते।।३१।।
उदीर्णसंसारदवाग्निशुशुक्षणिं
क्षणेन निर्वाप्य परां च निर्वृतिम् ।

प्रयच्छति त्वच्चरणारुणाम्बुज-
द्वयानुरागामृतसिन्धुशीकरः।।३२।।
विलास-विक्रान्त-परावरालयं
नमस्यदार्तिक्षपणे कृतक्षणम् ।
धनं मदीयं तव पादपंकजं
कदा नु साक्षात् करवाणि चक्षुषा।३३।।
कदा पुनः शङ्खरथाङ्गकल्पक-
ध्वजारविन्दांकुशवज्रलाञ्छनम् ।
त्रिविक्रम! त्वच्चरणाम्बुजद्वयं
मदीयमूर्द्धानमलंकरिष्यति।।३४।।
विराजमानोज्ज्वलपीतवाससं
स्मितातसीसूनसमामलच्छविम् ।
निमग्ननाभिं तनुमध्यमुल्लसद्
विशालवक्षः स्थलशोभिलक्षणम् ।।३५।।
चकासतं ज्याकिणकर्कशैः शुभै-
श्चतुर्भिराजानुविलंबिभिर्भुजैः।
प्रियावतंसोत्पलकर्णभूषण-
श्लथालकबंधविमर्दशंसिभिः।।३६।।
उदग्रपीनांसबिलम्बिकुण्डला-
लकावलीवन्धुरकम्बुकन्धरम् ।
मुखश्रिया न्यक्कृतपूर्णनिर्माला-
मृतांशुबिम्बांबुरुहोज्वलश्रियम् ।।३७।।

प्रबुद्धमुग्धांम्बुजचारुलोचनम्
सविभ्रमभ्रूलतमुज्ज्वलाधरम्।
शुचिस्मितं कोमलगण्डमुन्नसं
ललाटपर्यन्तविलम्बितालकम् ।।३८।।
स्फुरत् किरीटाङ्गदहारकण्ठिका-
मणीन्द्रकाञ्चीगुणनू पुरादिभिः।
रथाङ्गशंखासिगदाधनुर्वरै -
र्ल्लसत्तुलस्या वनमालयोज्ज्वलम् ।।३९।।
चकर्थ यस्या भवनं भुजान्तरं
तव प्रियं धाम यदीयजन्मभूः।
जगत्समग्रं यदपांगसंश्रयं
यदर्थमम्भोधिरमथ्यबन्धि च।। ४०।।
स्ववैश्वरूप्येण सदानुभूतया-
प्यपूर्ववद्विस्मयमादधानया।
गुणेन रूपेण विलासचेष्टितैः
सदा तवैवोचितया तव श्रिया।।४१।।
तया सहासीनमनन्तभोगिनि
प्रकृष्टविज्ञानबलैकधामनि।
फणामणिव्रातमयूखमण्डल-
प्रकाशमानोदरदिव्यधामनि।।४२।।
निवासशय्यासनपादुकांशुको-
पधानवर्षातपवारणादिभिः।

शरीरभेदैस्तव शेषतांगतै-
र्यथोचितं शेष इतीर्यते जनैः।।४३।।
दासः सखा वाहनमासनं ध्वजो
यस्ते वितानं व्यजनं त्रयीमयः।
उपस्थितं तेन पुरो गुरुत्मता
त्वदङ्घ्रिसमङ्मर्दकिणाङ्कशोभिना।।४४।।
त्वदीयभुक्तोज्झितशेषभोजिना
त्वया विसृष्टात्मभरेण यद्यथा।
प्रियेण सेनापतिना निवेदितं
तथानुजानन्तमुदारवीक्षणैः।।४५।।
हताखिलक्लेशमलस्स्वभावतः
सदानुकूल्यैकरसैस्तवोचितैः।
गृहीततत्त्परिचारसाधनै-
र्निषेव्यमाणं सचिवैर्यथोचितुम्।।४६।।
अपूर्वनानारसभावनिर्भर-
प्रबुद्धया मुग्धविदग्धलीलया।
क्षणाणुवत्क्षिप्तपरादिकालया
प्रहर्षयन्तं महिषीं महाभुजम्।।४७।।
अचिन्त्यदिव्याद्भुतनित्ययौवन -
स्वभावलावण्यमयामृतोदधिम्।
श्रियः श्रियं भक्तजनैकजीवितं
समर्थमापत्सखमर्थिकल्पकम्।।४८।।

भवन्तमेवानुचरन्निरन्तरम्
प्रशान्तनिश्शेषमनोरथान्तरः।
कदाहमैकान्तिकनित्यङ्किरः।
प्रहर्षयिष्यामि सनाथजीवितुम् ।।४९।।
धिगशुचिमविनीतं निर्दयं मामलज्जं
परमपुरुष ! योऽहं योगिवर्याग्रगण्यः।
विधिशिवसनकाद्यैर्ध्यातुमत्यन्तदूरं
तव परिजनभावं कामये कामवृत्तः।।५०।।
अपराध-सहस्रभाजनं पतितं भीमभवर्णावोदरे।
अगतिं शरणागतं हरेः कृपया केवलमात्मसात्कुरु।।५१।।
अविवेकधनान्धदिङ्मेखे, बहुधा सन्ततःदुःखवर्षिणि।
भगवन् ! भव दुर्दिने पथस्स्खलितं मामवलोकयाच्युत।।५२।।
न मृषा परमार्थमेव मे श्रृणु विज्ञापनमेकमग्रतः।
यदि मे न दयिष्यसे ततो दयनीयस्तव नाथ दुर्लभः।।५३।।
तदहं त्वदृते न नाथवान् मदृते त्वं दयनीयवान्न च।
विधिनिर्मितमेतदन्वयं भगवन् पालय मा स्म जीहपः।।५४।।
वपुरादिषु योऽपि कोऽपि वा गुणतोऽसानि यथा तथाविधः।
तदयं तव पादपद्मयो रहमद्यैव मया समर्पितः।।५५।।
मम नाथ ! यदस्ति योऽस्म्यहं, सकलं तद्धि तवैव माधव!
नियतस्वमिति प्रबुद्धधीरथवा किन्नु समर्पयामि ते।।५६।।
अवबोधितवानिमां यथा मयि नित्यां भवदीयतां स्वयम् ।
कृपयैवमनन्यभोग्यतां भगवन् भक्तिमपि प्रयच्छ मे।।५७।।

तव दास्यसुखैकसङ्गिनां भवनेष्वस्त्वपि कीटजन्म मे।
इतरावसथेषु मास्म भू-दपि मे जन्म चतर्मुखात्मना।।५८।।
सकृत्त्वदाकारविलोकनाशया
तृणीकृतानुत्तमभुक्तिमुक्तिभिः।
महात्मभिर्मामवलोक्यतां नय
क्षणेऽपि ते यद्विरहोतिदुस्सहः।।५९।।
न देहं न प्राणान्न च सुखमशेषाभिलषितं
न चात्मानं नान्यत्किमपि तव शेषत्वविभवात् ।
बहिर्भूतं नाथ! क्षणमपि सहे यातु शतधा
विनाशं तत्सत्यं मधुमथन! विज्ञापनमिदम् ।।६०।।
दुरन्तस्यानादेरपरिहरणीयस्य महतो
विहीनाचारोहं नृपशुरशुभस्यास्पदमपि।
दयासन्धिो! बन्धो! निरवधिकवात्सल्यजलधे!
तव स्मारं स्मारं गुणगणमितीच्छामि गतभीः।।६१।।
अनिच्छन्नप्येवं यदि पुनरितीच्छन्निव रज-
स्तमश्छन्नश्छद्मस्तुतिवचनभङ्गीमरचयम्।
तथापीत्थं रूपं वचनमवलम्ब्यापि कृपया
त्वमेवैवंभूतं घरणिधर! मे शिक्षय मनः।।६२।।
पिता त्वं माता त्वं दयिततनयस्त्वं प्रिय सुहृत्
त्वमेव त्वं मित्रं गरुरपि गतिश्चासि जगताम् ।
त्वदीयस्त्वद्भृत्यस्तव परिजनस्त्वद्गतिरहं
प्रपन्नश्चैवं सत्यहमपि तवैवास्मि हि भरः।।६३।।

जनित्वाहं वंशे महति जगति ख्यातयशसां,
शुचीनां युक्तानां गुणपरुषतत्वस्थितिविदाम् ।
निसर्गादिव त्वच्चरणकमलैकान्तमनसा-
मधोऽधःपापात्मा शरणद! निमज्जामि तमसि।।६४।।
अमर्यादः क्षुद्रश्चलमतिरसूया प्रसवभूः
कृतघ्नो दुर्मानी स्मरपरवशो वञ्चनपरः।
नृशंसः पापिष्ठः कथमहमितो दुःखजलधे-
रपाराछुत्तीर्णस्तव परिचरेयं चरणयोः।।६५।।
रघुवर! यदभूस्त्वं तादृशो वायसस्य,
प्रणत इति दयालुर्यस्य चैद्यस्य कृष्णः।
प्रतिभवमपराद्धुर्मुग्ध! सायुज्यदोऽभू-
र्वद किमुपदमार्गस्तस्य तेऽस्ति क्षमायाः।।६६।।
ननु प्रपन्नः सकृदेव नाथ!
तवाहमस्मीति च याचमानः।
तवानुकम्प्यः स्मरतः प्रतिज्ञां,
मदेकवर्ज्यं किमिदं व्रतंते।।६७।।
अकृत्रिमत्वच्चरणारविन्द-
प्रेमप्रकर्षावधिमात्मवन्तम् ।
पितामहं नाथमुनिं विलोक्य,
प्रसीद मद्धृत्तमचिन्तयित्वा।।६८।।
यत्पदाम्भोरुहध्यानविध्वस्ताशेषकल्मषः।
वस्तुतामुपयातोहं यामुनेयं नमामि तम् ।।६९।।

श्रुति-संदेश

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म पुरुषोत्तम सब प्रकार से सदा-सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत् भी उस परब्रह्म से पूर्ण ही है; क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तम से ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार पर ब्रह्म की पूर्णता से जगत् पूर्ण होने पर भी पर परब्रह्म परिपूर्ण है। उस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल लेने पर भी वह पूर्ण ही बच रहता है।

ईशा वास्यमिदः सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम् ॥ (ईशोपनिषत् 1)

अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी जड-चेतनस्वरूप जगत् है, यह समस्त ईश्वर से व्याप्त है, उस ईश्वर को साथ रखते हुए त्यागपूर्वक (इसे) भोगते रहो; (इसमें) आसक्त मत होओ; (क्योंकि) धन-भोग्य-पदार्थ किसका है अर्थात् किसी का भी नहीं है।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छः समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ (ईशोपनिषत् 2)

इस जगत् में शास्त्र नियत कर्मों को (ईश्वरपूजार्थ) करते हुए ही सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करनी चाहिये, इस प्रकार (त्याग भाव से, परमेश्वर के लिये) किये जाने वाले कर्म तुझ मनुष्य में लिप्त नहीं होंगे इससे (भिन्न) अन्य कोई प्रकार अर्थात् मार्ग नहीं है (जिससे कि मनुष्य कर्म से मुक्त हो सके)।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥ (मुण्डकोपनिषत् 8)

कार्य कारण स्वरूप उस परात्पर पुरुषोत्तम को तत्त्व से जान लेने पर इस (जीवात्मा) के हृदय की गाँठ खुल जाती है, सम्पूर्ण संशय कट जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं।

धर्मात्परं नास्त्यथो अबलीयान्बलीया समाशःसते धर्मेण यथाराजैवं यो वै स धर्मः सत्यं वै तत्स्मात्सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति धर्मं वा वदन्तः सत्यं वदतीत्येतद्ध्येवैतदुभयं भवति॥ (बृहदारण्यक0 1/4/14)

धर्म से उत्कृष्ट कुछ नहीं है। इसलिये जिस प्रकार राजा की सहायता से (प्रबल शत्रु को भी जीतने की शक्ति आ जाती है) उसी प्रकार धर्म के द्वारा निर्बल पुरुष भी बलवान् को जीतने की इच्छा करने लगता है। वह जो धर्म है, निश्चय सत्य ही है। इसी से सत्य बोलने वालों के कहते हैं कि 'यहधर्ममय वचन बोलता है' तथा धर्ममय वचन बोलने वाले से कहते हैं कि 'यह सत्य बोलता है', क्योंकि ये दोनों धर्म ही हैं।

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्माप्रमदः। सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम् । देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । (तैत्तिरीय0 1/11/1)

सत्य बोलो। धर्म का आचरण करो। स्वाध्याय से कभी न चूको। सत्य से कभी नहीं डिगना चाहिये। धर्म से नहीं डिगना चाहिये। शुभ कर्मो से कभी नहीं चूकना चाहिये। उन्नति के साधनों से कभी नहीं चूकना चाहिए। देव कार्य से और पितृ कार्य से कभी नहीं चूकना चाहियें।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम् ।श्रिया देयम् । ह्रिया देयम् । भिया देयम्। संविदा देयम्। (तैत्तिरीय0 1/11/2)

तुम माता में देवबुद्धि करने वाले बनो। पिता को देवस्वरूप समझने वाले होओ। आचार्य को देवरूप समझने वाले बनो। अतिथि को देवतुल्य समझने वाले

होओ। जो-जो निर्दोष कर्म हैं, उन्हीं का सेवन करना चाहिये। दूसरे दोषयुक्त कर्मों का कभी आचरण नहीं करना चाहिये। श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिये। बिना श्रद्धा के नहीं देना चाहिये। आर्थिक स्थिति के अनुसार देना चाहिये। लज्जा से देना चाहिये। भय से भी देना चाहिये और जो कुछ भी दिया जाय, वह सब विवेक पूर्वक देना चाहिये।

पुराणों का माङ्गलिक सदाचार

हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त ईश्वरः।
इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधु मानयेत् ॥

समस्त भूत-प्राणियों में सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि विराजमान हैं, यों अपने मनमें समझते हुए उन सबको इच्छानुसार वस्तुएँ देकर भलीभाँति सम्मानित करना चाहिये।

मनसैतानि भूतानि प्रणमेद्बहु मानयन् ।
ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति॥

इन सब भूत-प्राणियों में सर्वेश्वर भगवान् ने ही अपने अंश भूत जीव के रूप में प्रवेश किया -यूँ मानकर सब प्राणियों को अत्यन्त आदर देते हुए सबको मन ही मन प्रणाम करना चाहिये।

नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् ॥
अतः सर्वेषु कार्येषु सत्यमेव विशिष्यते।

'सत्य से बढ़कर धर्म और झूठ से बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं हैं' अतः सब कार्यों में सत्य को ही श्रेष्ठ माना गया है।

न दयासदृशो धर्मो न दयासदृशं तपः।
न दया सदृशं दानं न दयासदृशः सखा॥

दया के समान धर्म, दया के समान तप, दया के समान दान और दया

के समान कोई मित्र नहीं है।

सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता।
मातरं पितरं तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत् ॥
मातरं पितरं चैव यस्तु कुर्यात् प्रदक्षिणम् ।
प्रदक्षिणिकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥

माता सर्व तीर्थमयी है और पिता सर्व देवाताओं का स्वरूप है, इसलिए सब प्रकार से यत्न पूर्वक माता पिता का पूजन करना चाहिये। जो माता-पिता की प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा सातों द्वीपों से युक्त समूची पृथ्वी की परिक्रमा हो जाती है।

पतिवृता च या नारी पत्युर्नित्यं हिते रता।
कुलद्वयस्य पुरुषानुद्धरेत् सा शतं शतम् ॥

जो पतिव्रता नारी प्रतिदिन अपने पति के हितसाधन में लगी रहती है, वह अपने पितृकुल और पतिकुल दोनों कुलों की सौ -सौ पीढ़ियों का उद्धार कर देती है।

गंगा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।
मूच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

जो सैकड़ों योजन दूर से भी 'गंगा-गंगा' कहता है, वह सब पापों से मुक्त हो विष्णु लोक को प्राप्त होता है।

यथा वह्निप्रसङ्गाच्च मलं त्यजति काञ्चनम् ॥
तथा सतां हि संसर्गात् पापं त्यजति मानवः॥

जैसे सुवर्ण अग्नि के सम्पर्क में आने पर मैल त्याग देता है, उसी प्रकार मनुष्य संतों के संग से पाप का परित्याग कर देता है।

नित्यं धर्मार्थकामेषु युज्येत नियतो द्विजः।

न धर्मवर्जितं काममर्थं वा मनसा स्मरेत् ॥
सीदन्नपि हि धर्मेण न त्वधर्मं समाचरेत् ।
धर्मो हि भगवान् देवो गतिः सर्वेषु जन्तुषु॥

द्विज को चाहिये की वह सदा नियम पूर्वक रहकर धर्म, अर्थ और काम के साधन में लगा रहे। धमहीन काम या अर्थ का कभी मन से कभी चिंतन भी न करे। धर्म पर चलने से कष्ट हो, तो भी धर्म अधर्म का आचरण नहीं करना चाहिये, क्योंकि धर्म देवता साक्षात् भगवान के स्वरूप है, वे ही सब प्राणियों की गति है।

न हिंस्यात् सर्वभूतानि नानृतं वा वदेत् क्वचित् ।
नाहितं नाप्रियं वाच्यं न स्तेनः स्यात् कदाचन॥
तृणं वा यदि वा शाकं मृदं वा जलमेव वा।
परस्यापहरञ्जन्तुर्नरकं प्रतिपद्यते॥

किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। कभी झूठ न बोले। अहित करने वाला तथा अप्रिय वचन मूह से न निकाले। कभी चोरी न करे। किसी दूसरे की वस्तु- चाहे वो तिनका, साग, मिट्टी या जल ही क्यों न हो- चुरान वाला मनुष्य नरक में पड़ता है।

न चात्मानं प्रशंसेद्वा परनिन्दां च वर्जयेत् ।
वेदनिन्दां देवनिन्दां प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥

देवता, गुरू और ब्राह्मण के लिए किये जाने वाले दान में रूकावट न डाले। अपनी प्रशंसा न कर तथा दूसरे की निंदा का त्याग कर दे। वेदनिंदा और देवनिंदा का यत्न पूर्वक त्याग करें।

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाणीं मनःपूतं समाचरेत् ॥

भलीभाँति देख-भालकर आगे पैर रखे। वस्त्र से छानकर जल पिये। सत्य

से पवित्र हुयी वाणी बोले तथा मन से जो पवित्र जान पड़े, उसी का आचरण करें।

संसारेऽस्मिन् क्षणार्धोऽपि सत्संगः शेवधिर्नृणाम्।
यस्मादवाप्यते सर्वं पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥

इस संसार में यदि क्षण भर के लिये भी सत्संग मिल जाये तो वो मनुष्यों के लिये निधि का काम देता है, क्योंकि उससे चारों पूरषार्थ प्राप्त हो जाते है।

परतापच्छिदो ये तु चन्दना इव चन्दनाः।
परोपकृतये ये तु पीड्यन्ते कृतिनो हि ते॥
सन्तस्त एव ये लोके परदुःखविदारणाः।
आर्तानामार्तिनाशार्थं प्राणा येषां तृणोपमाः।
तैरियं धार्यते भूमिर्नरैः परहितोद्यतैः।
मनसो यत्सुखं नित्यं स स्वर्गो नरकोपमः॥
तस्मात् परसुखेनैव साधवः सुखिनः सदा।

जो चन्दन वृक्ष की भाँति दूसरों के ताप को दूर करके उन्हें आह्लादित करते है तथा जो परोपकार के लिये स्वयं कष्ट उठाते है, वो ही पुण्यात्मा है। संसार में वे ही संत है, जो दूसरों के दुःखों का नाश करते है तथा पीड़ित जीवों की पीड़ा दूर करने के लिये जिन्होनें प्राणों को तिनके के समान निछावर कर दिया है। जो मनुष्य सदा दूसरों की भलाई के लिये उद्यत रहते है, उन्होनें ही इस पृथ्वी को धारण कर रखा है। जहाँ सदा अपने मन ही सुख मिलता है, वह स्वर्ग भी नरक के ही समान है, अतः साधु पुरुष सदा दूसरों के सुख से ही सुखी होते है।

संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥
असंतोषः परं दुःखं संतोषः परमं सुखम्।
सुखार्थी पुरुषस्तस्मात् संतुष्टः सततं भवेत् ॥

संतोषरुपी अमृत से तृप्त एवं शान्त चित्त वाले पुरुषों को जो सुख प्राप्त है, वो धन के लोभ से इधर उधर दौड़ने वाले लोगों को कहाँ से प्राप्त हो सकता है। असंतोष ही सबसे बढ़कर दूख है और संतोष ही सबसे बड़ा सुख है, अतः सुख चाहने वाले पुरुष को सदा सतुष्ट रहना चाहिये।

अवमानें कुप्येत सम्माने न प्रहृष्यति।
समदुःखसुखो धीरः प्रशान्त इति कीर्त्यते।।
सुखं ह्यवमतः शेते सुखं चैव प्रबुध्यति।
श्रेयस्करमतिस्तिष्ठेदवमन्ता विनश्यति।।
अवमानी तु न ध्यायेत् तस्य पापं कदाचन।
स्वधर्ममपि चावेक्ष्य परधर्मं न दूषयेत् ।।

जो अपना अपमान होने पर क्रोध नहीं करता और संम्मान होने पर हर्ष से फूल नहीं उठता, जिसकी दृष्टि में सुख और दुख समान है, उस धी पुरुष को प्रशांत कहते है जिसका अपमान होता है, वह साधु पुरुष तो सुख से सोता और सुख से जागता है तथा उसकी बुद्धि कल्याणमयी होती है परन्तु अपमान करने वाला मनुष्य स्वयं नष्ट हो जाता है। अपमानित पुरुष को चाहिये की वह कभी अपमान करने वाले की बुराई न सोचे। अपने धर्म पर दृष्टि रखतें हुए भी दूसरों के धर्म की निंदा न करें।

सा बुद्धिर्विमलेन्दुशङ्खधवला या माधवव्यापिनी।
सासा जिह्वा मृदुभाषिणी नृप मुहुर्या स्तौति नारायणम् ।।

वही बुद्धि निर्मल और चन्द्रमा तथा शंख के समान उज्जवल है जो सदा भगवान माधंव के चिंतन में संलग्न रहती है तथा वही जिह्वा मधुरभाषिणी है, जो बारंबार भगवान नारायण का स्तवन किया करती है।

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ।।

जिस के मन में कोई कामना नहीं या जो सब कुछ पाने की कामना वाला है अथवा जो उदार बुद्धि वाला पुरुष केवल मोक्ष की ही कामना रखता है, सबको तीव्र भक्ति योग के द्वारा परम पुरुष भगवान् श्रीहरि की ही आराधना करनी चाहिये।

शास्त्रों में धर्म का महत्त्व

सुखं वाञ्छन्ति सर्वे हि तच्च धर्मसमुद्भवम् ।
तस्माद्धर्मः सदा कार्यऽ सर्ववर्णः प्रयत्नतः॥
धर्महानिर्न कर्तव्या कर्तव्यो धर्मसंग्रहः।
धर्माधर्मौ हि सर्वेषां सुखदुःखोपपादकौ॥
यो यस्य विहितो धर्मस्तेन धर्मेण कारयेत् ।
विपरीतं चरेद् यस्तु किल्बिषी स निगद्यते॥
धर्मे वर्धति वर्धन्ते सर्वभूतानि सर्वदा।
तस्मिन् ह्रसति ह्रीयन्ते तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥
न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् ।
अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन् विपर्ययम् ॥
नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति॥
अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति॥
धर्म शनैः संचिनुयाद वल्मीकमिव पुत्तिकाः।
परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥
नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः॥

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति॥
तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥
धर्म एवं हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो वधीत् ॥
वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः।
परधर्मेण जीवन् हि सद्यः पतति जातितः॥
दाराः पुत्रा धनं वा परिजनहितो बन्धुवर्गः प्रियो वा
माता भ्राता पिता व श्वशुरकुलजना भृत्य ऐश्वर्यवित्ते।
विद्या रूपं विमलभवनं यौवनं यौवतं वा
सर्वं व्यर्थं भरणसमये धर्म एकः सहायः॥
जलबुद्बुदसंकाशं वर्ष्मतत् कथितं बुधैः।
न हि प्रमाणं जन्तूनामुत्तरक्षणजीवने॥
तस्मादात्महितं नित्यं चिन्तयन्नेव तच्चरेत् ॥

सुख की अभिलाषा सभी रखते हैं, परन्तु वह सुख धर्माचरण से ही प्राप्त होता है, अतः सभी वर्णवालों को प्रयत्नपूर्वक अपने-अपने धर्म का सदा पालन करना चाहिये। व्यक्ति को किसी भी प्रकार धर्म की हानि नहीं करनी चाहिये, अपितु निरन्तर धर्माचरणद्वारा धर्म का ही संचय करना चाहिये, क्योंकि धर्म और अधर्म ही सबको सुख एवं दुःख प्राप्त कराने वाले हैं। शास्त्रों में चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों के लिये जो धर्म- मर्यादा प्रतिपादित की गयी है, उसका अवश्य

प्रतिपादन करना चाहिये, क्योंकि वही उसका शास्त्रप्रतिपादित स्वधर्म है। इसके विपरीत जो आचरण करता हैं, वह पाप का भागी बनता है, अतः स्वधर्म का पालन ही परम श्रेयस्कर है। धर्म की वृद्धि होने पर सदा समस्त प्राणियों का अभ्युदय होता है और उसका ह्रास होने पर सबका ह्रास हो जाता है, अतः धर्म का कभी लोप नहीं होने देना चाहिये। अधर्माचारी पापियों का शीघ्र नाश होता देखकर (अर्थात् उन्हें दुर्दशापन्न देखकर धर्माचरण से दुःख पाता हुआ भी मनुष्य अधर्म में मन न लगाये। किया हुआ पाप पृथ्वीं में बोये हुए बीज की भाँति तत्काल फल नहीं देता, किन्तु धीरे धीरे फलित होने का समय आने पर पापकर्ता का मूलोच्छेदन कर देता हैं अधर्म से पहले कुछ समय तक तो वृद्धि होती है और उससे सभीप्रकार के वैभव भी दिखायी देते हैं तथा उससे शत्रुओं पर विजय भी प्राप्त होती है फिर उसके बाद उसका समूल विनाश हो जाता है (मानव) सभी प्राणियों को पीड़ा न देता हुआ परलोक में सहायता पहुँचाने के लिये अपनी शक्ति के अनुसार धीरे-धीरे धर्म का संचय उसी प्रकार करे जैसे दीमक धीर-धीरे मिट्टी की दीवाल खड़ी करती है। परलोक में माता-पिता अथवा स्त्री पुत्र या हित-परिजन कोई सहायता नहीं करता, केवल धर्म ही सहायक होता है, इसलिये (मानव को) यत्नपूर्वक धर्म का ही संचय करना चाहिये। एक धर्म ही ऐसा मित्र है, जो मरने पर भी उसके साथ जाता है और अन्य सभी पदार्थ शरीर के साथ नष्ट हो जाते हैं। मृत शरीर को काष्ठ और ढेले की तरह धरती पर छोडकर बान्धव लोग मुँह फेरकर चले जाते हैं, केवल धर्म ही उसके पीछे-पीछे जाता हैं इसलिये अपनी सहायता के हेतु धीरे-धीरे सदा धर्म का संग्रह करना चाहिये। धर्म की सहायता से ही पुरुष घोरतम नरकादि दुःखों को पार कर लेता हैं नष्ट किया गया धर्म ही नाश करता है और रक्षित किया हुआ धर्म ही रक्षा करता है नष्ट किया हुआ धर्म कहीं हमें नष्ट न कर दे यह विचार कर धर्म का कभी नाश नहीं करना चाहिये। अपना धर्म यदि किसी प्रकार से खण्डित हो तो भी श्रेष्ठ है, किन्तु दूसरे का धर्म सर्वाङ्ग-सम्पन्न होते हुए भी श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि दूसरे के धर्म पर जीने वाला शीघ्र ही जाति से पतित हो जाता है। स्त्री-पुत्र, धन-परिजन, भाई बन्धु, प्रिय

सुहृद्, माता-पिता तथा भ्राता एवं श्वशुर-कुल के लोग और भृत्यवर्ग, ऐश्वर्य, धन, विद्या, रूप, उज्ज्वल भवन, यौवन तथा युवतियों का समुदाय- ये सभी मृत्युकाल में व्यर्थ सिद्ध होते हैं। उस समय एकमात्र धर्म ही सहायक होता हैं विद्वानों ने इस शरीर को जल के बुलबुले की भाँति क्षणभंगुर एवं नाशवान् बतलाया है। अगले क्षण जीवन बना रहेगा इसका कोई प्रमाण नहीं है, अर्थात् प्राणियों का जीवन प्रतिक्षण विनाश की ओर जा रहा है, अगले ही क्षण क्या हो जायगा, यह किसी को नहीं मालूम, इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह निरन्तर यह चिन्तन करता रहे कि किस प्रकार- किस उपाय से मेरा कल्याण हो सकता है और जब उसे आत्म कल्याण का साधन मालूम हो जाय तो फिर उसी साधन में लग जाय अंन्य कुछ भी न करे, वह साधन है धर्म एवं उसका पालन।

वेद-वाणी

ऋग्वेद

1. **सं गच्छध्वं सं वदध्वम् ।** (10/191/2) मिलकर चलो और मिलकर बोलो।

2. **न स सखा यो न ददाति सख्ये।** (10/117/4) वह मित्र ही क्या, जो अपने मित्र को सहायता नहीं देता।

3. **सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् ॥** (9/73/1) धर्मात्माको सत्य की नाव पार लगाती है।

4. **देवानां सख्यमुप सेदिमा वयम् ।** (1/89/2) हम देवताओं की मैत्री प्राप्त करें।

5. **माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥** (1/90/6) हमारे लिये ओषधियाँ मधुरता से परिपूर्ण हों।

6. **स्वस्ति पन्थामनु चरेम।** (4/41/14) हे प्रभो! हम कल्याण- मार्ग के पथिक बनें।

यजुर्वेद

1. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम। (25/21) हम कानों से सदा भद्र-मङ्गलकारी वचन ही सुनें।

2. मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ (40/1) किसी के धन पर न ललचाओ।

3. मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ (36/18) हम सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें।

4. ऋतस्य पथा प्रेत ॥ (7/45) सत्य के मार्ग पर चलो।

5. तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ (34/1) मेरा मन उत्तम संकल्पों वाला हो।

अथर्ववेद

1. सं श्रुतेन गमेमहि॥ (1/1/4) हम वेदादि शास्त्रों से सदा सम्पन्न रहें।

2. परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु। (18/3/62) हमसे मृत्यु दूर हे और हमें अमृत पद प्राप्त हो।

3. सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥ (19/14/6) हमारे लिये सभी दिशाएँ कल्याणकारिणी हों।

धर्मशास्त्र-सुभाषित-सुधानिधि

जितेन्द्रियः स्यात् सततं वश्यात्माक्रोधनः शुचिः।
प्रयुञ्जीत सदा वाचं मधुरां हितभाषिणीम् ॥

(औशनस, स्मृति 3/15)

आत्मकल्याण कामी व्यक्ति को चाहिये कि वह निरन्तर इन्द्रियों को अपने वश में रखकर जितेन्द्रिय रहे। मनके वश में न होकर आत्मा के वश में रहे।

क्रोध नकरें, सदा बाह्याभ्यन्तर-पवित्र रहे और सदा ऐसी वाणी बोले जो मधुर एवं हित करने वाली हो अर्थात् परुष (कठोर) एवं अकल्ज्याणकारिणी वाणी न बोले।

भूताभयप्रदानेन सर्वकामानवाप्नुयात् ।

दीर्घमायुश्च लभते सुखी चैव तथा भवेत् ॥ (संवर्त0 53)

सभी प्राणियों को अभय प्रदान करने से सभी कामनाओं की प्राप्ति हो जाती हैं, दीर्घ आयु प्राप्त होती है और परम सुख प्राप्त होता है। **यं त्वार्याः क्रियमाणं प्रशंसन्ति स धर्मो यं गर्हन्ते सोऽधर्मः।** (आप0 धर्मसूत्र 7/7)

सत्पुरुष जिस आचार का स्वयं पालन करते हुए प्रशंसा करते हैं, उसका अनुमोदन करने का परामर्श देते हैं, वह धर्म है और जिस आचार की निन्दा करते हैं तथा स्वयं भी उसका आचरण नहीं करते, वह अधर्म है। **हृष्टो दर्पति दृप्तो धर्ममतिक्रामति धर्मातिक्रमे खलु पुनर्नरकः।** (आप0 धर्म0 4/4)

अर्थात् किसी भी कार्य के सिद्ध हो जाने पर हर्षातिरेक से प्रफुल्लित नहीं होना चाहिये, क्योंकि हर्षोद्रेक में दर्प या अहंकार का प्रवेश हो जाता है और इससे पूज्य-अपुज्य तथा कार्य-अकार्य का ठीक निर्णय नहीं हो पाता, इस कारण उसे प्रमाद हो जाता है। ऐसे प्रमत्त उवं दृप्त व्यक्ति के द्वारा धर्म का अतिक्रमण हो जाता है, ज़िससे इस लोक में तो पतन हो ही जाता है, परलोक में भी नरक की प्राप्ति होती है, अतः नित्य समत्व-योग की स्थिति में रहना चाहिये।

त्रयः पुरुषसयातिगुरवो भवन्ति। माता पिता आचार्यश्च। तेषां नित्यमेव शुश्रूषुणा भवितव्यम् । यत् ते ब्रूयुस्तत् कुर्यात्तेषां प्रियहितमाचरेत्। न तैरननुज्ञातः। किञ्चिदपि कुर्यात् । (अ0 31)

माता-पिता और आचार्य-ये तीन पुरुष के अतिगुरू कहलाते हैं। इसलिये नित्य उनकी सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये। जो वे कहें, वही करना चाहिये। सर्वदा उनका प्रिय और हितकारी कार्य करना चाहिये। बिना उनकी आज्ञा के कुछ भी नहीं करना चाहिये।

गवां हि तीर्थे वसतीह गङ्गा पुष्टिस्तथा सा रजसि प्रवृद्धा।
लक्ष्मीः करीषे प्रणतौ च धर्मस्तासां प्रणामं सततं च कुर्यात् ॥

(विष्णुस्मृति अ० 23)

गोमूत्र में गङ्गा जी का वास है, इसी प्रकार गोधूलि में अभ्यूदय का निवास तथा गोमय मं लक्ष्मी का निवास है और उनके प्रणाम करने में सर्वोपरि धर्म का पालन हो जाता है, अतः उन्हें निरन्तर प्रणाम करते रहना चाहिये।

मातृवत् परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत् ।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति॥

(आप० स्मृति 10/11)

परायी स्त्री को माता के समान, परद्रव्य को मिट्टी के ढेले के समान और सभी प्राणियों को अपने ही समाज जो व्यक्ति देखता है, समझता है, वही वास्तव में सच्चा आत्मद्रष्टा है।

सतीव प्रियभर्तारं जननीव स्तनन्धयम् ।
आचार्यं शिष्यवनमित्रं मित्रवत् लालयेद्धरिम् ॥
स्वामित्वेन सुहृत्त्वेन गुरुत्वेन च सर्वदा।
पितृत्वेन समाभाव्यो मातृभावेन माधवः॥

(शाण्डिल्य० 4/35-36)

जैसे पतिव्रता स्त्री अपने प्रियतम पति की सर्वतोभावेन सेवा करती है, जैसे माता अपने लाडले दुध मुँहे बच्चे का पालन करती है, जैसे सत् -शिष्य अपने आचार्य के प्रति श्रद्धा एवं आदरभाव रखता है और जैसे एक अच्छा मित्र अपने अच्छे मित्र का सब प्रकार से ख्याल रखता है, उसी प्रकार भगवान् की भी उन उन भावनाओं से यथा समय सेवा करें।

आख्यान- कुमारिल भट्ट का आत्मदाहरूप प्रायश्चित धर्मशास्त्र में

पापों से छुटकारा पाने के लिये प्रायश्चितका विधान किया गया है। धर्मशास्त्र ने प्रायहश्चित लिये बहुत जोर दिया है। कारण यह है कि प्रायश्चित कर लेने से थोड़े ही कष्ट में पापों से छुटकारा मिल जाता है, नहीं तो नरक आदि लोमहर्षक कष्टों को बहुत दिनों तक सहना पड़ता है। नरक से छूटने के बाद भी उन पापों का भिन्न-भिन्न चिह्न लेकर मनुष्य को जन्म लेना पड़ता हैं। महापातकों का चिह्न तो सात जन्मों तक पीछा नहीं छोड़ता-

प्रायश्चितविहीनानां महापातकिनां नृणाम् ।

नरकान्ते भवेज्जन्म चिह्नाङ्कितशरीरिणाम् ॥

महापातकजं चिह्नं सप्तजन्मनि जायते। (शातातप. 1/1,3)

अतः तानकार लोग अपने पापों का प्रायश्चित अवश्य कर लेते हैं । महापण्डित कुमारिल भट्ट ने जान-बूझकर एक पाप किया था। वह पाप था उनका अपने गुरुओं से शास्त्रार्थ कर उन्हें परास्त करना। यह पाप भी उन्होनें वैदिक धर्म के उद्धार के लिये किया था।

कुमारिल भट्ट अभी बालक थे। काशीकी गलियों से कहीं गुजर रहे थे। उनके कन्धों पर ऊपर से आँसुओं कीं कुछ बूँदें गिरीं। अचकचाकर उन्होंने ऊपर की ओर दृष्टि दौड़ायी तो देखा कि काशीनरेश की कन्या बहुत उद्विग्न होकर रो रही है और कह रही है- 'किं करोमि क्व गच्छामि को वेदानुद्धरिष्यते।'

अर्थात् 'क्या करूँ' कहाँ जाऊँ। वह कौन है, जो वेदों का उद्धार कर सके।' वेदों के प्रति एक बालाका इतना बड़र अनुराग और उसके उद्धार के लिये इतनी छटपटाहट देखकर कुमारिलका ब्राह्मणत्व जाग उठा। बालाका मानो सोते से जागा। बोला-बहन! मत रोओ, मैं वेदों का उद्धार करूँगा, यह मेरा प्रण है। थोड़े दिन प्रतीक्षा करो- 'मां रोदीर्वरारोहे भट्टाचार्योऽस्मि भूतले।'

कुमारिल ने जो कुछ भी प्रतिज्ञा कर ली थी, उसे अब पूरा करना था। कुमारिल जानते थे कि बौद्धों के खण्डन के लिये बौद्ध-ग्रन्थों का गहन अध्ययन और मनन अपेक्षित है और यह काम तक्षशिला के चोटी के आचार्यों से ही सम्पन्न

हो सकता है। कुमारिल भट्ट तक्षशिला पहुँचे और बौद्ध गुरूओं के चरणों में बैठककर अपना अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। उनकी लगन ने उन्हें शीघ्र ही अध्ययन की सीमा तक पहुँचा दिया।

एक दिन कुमारिल भट्ट बहुत ही नम्रता के साथ अपने गुरुओं के चरणों में लोट गये। उठाये उठे नहीं। गुरुजन समझ गये कि आज कुमारिल हमसे कुछ चाह रहा है, बोले-'कुमारिल! क्या बात है, क्या चाहते हो बालो। तुम्हारे लिये कुछ अदेय नहीं है।' कुमारिल संकोच से गड़े जा रहे थे। उन्होंने अपने को सयत कर हाथ जोड़कर कहा-गुरुजी! जब मैं बौद्धधर्म और वेद दोनों का आलोचनात्मक अध्ययन करता हूँ, तब मुझे वेद का मार्ग ही सत्य प्रतीत होता है, इसलिये मैं आप लोगों से विचार-विमर्श करना चाहता हूँ। आपने ही सिखाया है कि सत्य के लिये निरन्तर प्रयास करते रहना चाहिये। उसी सत्य की प्राप्ति के लिये मैं यह प्रयास कर रहा हूं।' आचार्य लोग भी सत्य के पक्षपाती थे। शास्त्रार्थ से उसका स्वरूप निखर उठे, यह वे भी चाहते थे, इसलिये प्रसन्नता के साथ शास्त्रार्थ का समय निश्चित कर दिया गया।

एक ओर वात्सल्य से भरा आचार्यों का समूह बैठा था और दूसरी ओर नम्रता और श्रद्धा की भावना से अभिभूत अकेला कुमारिल।

शास्त्रार्थ बहुत ही शान्त वातावरण में चलने लगा। धीरे-धीरे विचारमें गहराई आती जा रही थी। गुरुजन शिष्य की प्रतिभा से प्रसन्न थे, किंतु उन्होंने सत्य को कुमारिल के पक्ष में स्थित पाया। फिर भी आचार्य जन चाहते थे कि जिसे ईश्वर कहा जाता है, उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति भी कर ली जाय। अन्त में दोनों पक्ष की ओर से यह निर्णय हुआ कि दोनों पक्ष के लोग पहाड़ की चोटी से कूदकर उस सत्य को प्रमाणित करें। कुमारिल ने गुरुजनों से कहा- 'मैं ईश्वर की सत्ता का प्रतिपादन कर रहा हूँ, इसलिये मेरा कर्तव्य हो जाता है कि सबसे पहले पहाड़ की चोटी से मैं ही कूदूँ। यदि मैं बच गया तो यह समझते दर न लगेगी कि ईश्वर है और उसी ने मुझे बचाया है।' ऐसा कहकर कुमारिल भट्ट प्रसन्नता के साथ

पहाड़ की चोटी पर चढ़ गये और बोले-'यदि ईश्वर है तो उसकी कृपा से मेरा बाल भी बाँका न हो' और कूद गये। सचमुच कुमारिल का बाल भी बाँका नहीं हुआ। जब बौद्धों की बारी आयी, उनमें से एक भी चोटी से कूदने को तैयार नहीं हुआ। इस तरह कुमारिल भट्ट ने सभी के मस्तिष्क में ईश्वर की सत्ता का विश्वास करा दिया। उसके बाद वे फिर गुरू के चरणों में लोट गये और उनसे कहा कि 'मैंने आपसे ही पढ़ा है और आपको ही चुप कराने का प्रयास किया है। यह मुझसे बहुत बड़ा अपराध बन गया है। जब तक जिंदा रहूँगा, तब तक यह पाप मुझे सताता रहेगा। इसलिये मैं इसका प्रायश्चित करूँगा। आप लोग मुझे क्षमा करें।' गुरुओं ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि तुमने सत्य की खोज के लिये हमसे विचार-विमर्श किया है, इसलिये तुझमें कोई पाप नही होना चाहिये, किंतु शास्त्रविश्वासी कुमारिल भट्ट शास्त्रानुसार प्रायश्चित के निमित्त प्रयाग में जाकर तुषानल की चिता जलाकर वीरता के साथ उस पर लोट गये। उनका शरीर धीरे-धीरे जलकर पञ्चतत्त्व में विलीन हो गया।

यह है सच्ची आस्तिकता, यह है सच्चा शास्त्र-विश्वास। महर्षि गौतम और उनके धर्मशास्त्र महर्षि गौतम वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के सप्तर्षियों में एक ऋषि हैं।[1] ये ब्राह्माजी की मानसी सृष्टि से उद्भूत हैं। देवी अहल्या इनकी पत्नी है। ये भी ब्रह्माजी द्वारा उत्पन्न निर्दिष्ट हैं। महर्षि गौतम का चरित्र अलौकिक है। इनके-जैसा त्याग, वैराग्य, तप तथा धर्माचरण अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। अनेक स्थानों पर इनके आश्रम का उल्लेख प्राप्त होता है। महाभारत में यह उल्लेख है कि महर्षि गौतम ने पारियात्र पर्वत पर साठ हजार वर्षों तक तपस्या की थी और इनकी तपस्या से प्रसन्न होकर धर्मराज इनके आश्रम पर पधारे थे। महर्षि गौतम न्याय-दर्शन आदि अनेक विषयों के आचार्य कहे गये हैं। प्राचीनतम धर्माचार्यों में महर्षि गौतम का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है। आचार्य याज्ञवल्क्य ने धर्मशास्त्र प्रणेताओं में महर्षि गौतम को उल्लिखित किया है (याज्ञ. 1/5)। महर्षि गौतम के नाम से एक धर्मसूत्र तथा एक स्मृति प्रापत होती है, यहाँ संक्षेप

में इनका विवरण दिया जा रहा है-

(1) गौतमधर्मसूत्र - धर्मशास्त्रीय व्यवस्था में गौतमधर्मसूत्र सर्वाधिक प्राचीन एवं अत्यधिक प्रामाणिक माना जाता है। इस धर्मसूत्र का सम्बन्ध विशेष रूप से सामवेद से बताया गया है। यह 'धर्मसूत्र' सूत्रों में उपनिबद्ध है और इसमें आद्यन्त गद्यभाग ही है, उद्धरणों के रूप में भी कोई श्लोक नहीं मिलता। अन्य धर्मसूत्रों में यह बात नहीं है। आचार्य हरदत्त, आचार्य मस्करी तथा श्रीअसहाय द्वारा इस धर्मसूत्र पर भाष्य लिखा गया है। इस धर्मसूत्र में छोटे-छोटे 29 अध्याय है। 20 वें अध्याय में भाष्य उपलब्ध नहीं होता। यहाँ संक्षेप में अध्यायों में वर्णित विषय-वस्तु का निर्देश किया जा रहा है-

(अध्याय-1) आचार, द्विजाति के उपनयन का काल, (2,3) ब्रह्मचारी के नित्य-नैमित्तिक कर्म, नैष्ठिक ब्रह्मचारी के नियम, (4) आठ प्रकार के विवाहों का वर्णन, (56) ग्रहस्थ धर्म का वर्णन, गृहस्थ के कर्त्तव्य, अभिवादन की विधि और सम्मान के हेतु, (7) आपद्धर्म, (8) संस्कारों की महिमा तथा चालीस संस्कारों और दया, क्षान्ति, अनुसुया, शौच, अनायासय, मङ्गल, अकार्पण्य तथा अस्पृहा- इन आठ आत्मगुणों का नाम-परिगणन, (9) स्नातंक तथा गृहस्थ के आचरण, (10) चारों वर्णों के कर्तव्य-कर्मों का वर्णन, (11) राजधर्म, राजा के पुरोहित के गुण, (12) दण्डविधान, (13) साक्षी (गवाह)- का वर्णन, (14) आशौच, (15) श्राद्ध-विधान, (16) अनध्याय, (17) भक्ष्याभक्ष्य-विवेचन, (18) ऋतुकाल तथा पति-पत्नी का परस्पर-धर्म, (19) निषिद्ध वस्तुओं के व्यवहार का प्राश्चित, (20-22) कर्मविपाक तथा शान्तिकर्म, (23-26) प्रायश्चित-विधान, (27-28) कृच्छ्र चान्द्रायणादिव्रत तथा (29) सम्पत्ति-विभाजन, द्वादश (बारह) प्रकार के पुत्र तथा स्त्री-धन एवं वसीयत आदि का वर्णन।

इस प्रकार उपर्युक्त संक्षिप्त सूची से स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि गौतम ने जीवन के सभी क्षेत्रों में धर्म-मर्यादा को ही मुख्य माना है और उसी के अनुसार

सभी लोगों को अपने 'शातातपीय कर्मविपाकसंहिता' भी कहते हैं।

कर्तव्याकर्तव्य के विषयों की धर्मशास्त्रों में जोमर्यादा स्थिर की गयी है, उसका अल्लंधन करने से और मनमाना आचरण करने से मनुष्य पाप का भागी बनता हैं इस पाप की निवृत्ति के लिये धर्मशास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान बताया गया है, जिसका विधिपूर्वक अनुष्ठान करने से मनुष्य उस पाप से छुटकारा पाकर शुद्ध हो जाता हैं इस सम्बन्ध में महर्षि शातातपजी ने बहुत विचार किया है और यह बताया है कि किस पाप कर्म से जन्मान्तर में किस रोग की उत्पत्ति होती है रोगोत्पत्ति के सम्बन्ध में उनका कहना है कि वर्तमान में व्यक्ति जो रोग-व्याधि से ग्रस्त दिखाई देता है, उसके मूल में यही कारण है कि जन्मानतरर में उसने कोई पाप कर्म किया और उसका प्रायश्चित नहीं किया। जन्मान्तरीय दुष्कर्म से नरक-यातनां होती है और फिर दूसरे जन्म में उसे कौन योनि प्राप्त होगी यदि मनुष्य जन्म होगा तो उसे कौन सा रोग होगा इस सम्बन्ध में विस्तार से इस स्मृति में बतलाया गया हैं

महर्षि ने अपनी स्मृति के प्रारम्भ में ही यह बतलाया है कि पातकी व्यक्ति यदि प्रायश्चित नहीं करता तो मरने पर नरक भोगने के पश्चात् पाप सूचक चिन्हों से युक्त होकर मनुष्य योनि में जन्म लेता है और उसका वह पाप सूचक रोग अगले जन्मों मेंभी प्रादुर्भूंत होता रहता हैं किन्तु यदि वह दूसरे जन्म में प्रायश्चित और पश्चाताप कर लेता है तो फिर उसे उस पाप सूचक रोग से मुक्ति किमल जाती हैं महापातकका चिन्ह 7 जन्मतक, उपपातकका चिह्न 5 जन्मतक और अन्य साधारण पापों का चिह्न 3 जन्म तक प्रकट होता हैं ये रोग जप, देवपूजन, होम तथा दान आदि धर्मानुष्ठानों से शान्त हो जाते हैं।

महर्षि शातातप मनुष्यों को यही शिक्षा देते हैं कि वे कभी भी निन्दित कर्म, पाप-कर्म न करें, हमेशा धर्माचरण में ही लगे रहें। जो धर्माचरण नहीं करते, शास्त्र की आज्ञा का पालन नहीं करते, उन्हें निश्चित ही नरक भोगना पडता है और जन्मान्तर में उन्हें भयंकर रोग होता है और यदि वे प्रायश्चित कर लेते हैं तो

उन्हें उस पापजनित कष्ट से मुक्ति मिल जाती है।

महर्षि शातातपजीका कहना है कि कुष्ठ राजयक्ष्मा, प्रमेह, संग्रहणी, मूत्रकृच्छ (पथरी) अतिसार, भगंदर, गण्डमाला, पक्षाघात तथा नेत्रनाश आदि भयंकर रोग महापापों से पैदा होते है। इसी प्रकार जलोदर, यमृत, प्लीहा आदि के रोग, शूलरोग, श्वास, अजीर्ण, ज्वर तथा गलग्रह आदि रोग उपपातकों से उत्पन्न होते हैं शरीर में सफेद दाग, शरीर का काँपना, खुजली चकत्ते पड़ना तथा दाद आदि रोग सामान्य पापों से पैदा होते है। इसी प्रकार अर्श (बबासीर) आदि रोग मनुष्य को अतिपाप (अत्यधिक पाप) करने से होते हैं।

इन पापों के उपशमन के लिये पातक, उपपातक तथा महापातक के बलाबलकों विचार करके प्रायश्चित्त करना चाहिये। इन पापों की शान्ति के लिये गोदान, वृषदान, भूमिदान, धान्यदान, वस्त्रदान, त्र्यम्बक- मन्त्र का एक लाख जप, पूजन, हवन ग्रहशान्ति और ब्राह्मणों से पूछकर करने चाहिये। इन सभी शान्तिपौष्टिक कर्मो में ब्राह्मणों की संतुष्टि मुख्य कारण है, क्यों कि ब्राह्मण जो कहते हैं, उसी को देवता मानते है।

ब्राह्मण सर्वदेवमय हैं, इसलिये उनके वचन अन्यथा नहीं हो सकते। उनके वाणीरूप जहल के द्वारा मलिन प्राणी सर्वथा शुद्ध हो जाते हैं-

ब्राह्मणा यानि भाषन्ते मन्यन्ते तानि देवताः।
सर्वदेवमया विप्रा न तद्वचनमन्यथा।।
तेषां वाक्योदकेनैव शुद्धयतिन्त मलिना जनाः।।

(शाता0 1/27,30)

यहाँ महर्षि शातातपप्रोक्त कर्मविपापकी एक संक्षिप्त तालिका दी जा रही है, जिससे यहं स्पष्ट हो जाता है कि किस दुष्कर्म- पाप के फलस्वरूप कौन-सा रोग उत्पन्न होता है-

पाप	रोग
1. ब्रह्महत्या	पाण्डुकुष्ठ
2. गोवध	कुष्ठ
3. पितृवध	चेतनाहीनता
4. मातृवध	अन्धत्व
5. भगिनीहत्या	बधिर
6. भ्रातृवध	मूक (गूँगा)
7. बालघाती	मृतवत्सवाला
8. गोत्रहा	कुष्ठी, निर्वंश
9. स्त्रीहन्ता	अतिसार
10. राजहत्या	क्षय
11. उष्ट्रहत्या	विकृतस्वर
12. हश्वहत्या	वक्रतुण्ड
13. हरिणहत्या	खंज (लाँगड़ा)
14. मार्जारहत्या	पीतपाणि
15. शुक-सारिका वध	स्खलितवाक (हकलाना)
6. वकहत्या	दीर्घ नासिका
7. काकवध	कर्णहीन
8. सुरापान	श्यावदन्त (काले-पीले दाँतवाला)
9. मद्यपाथी	रक्तपित्त
0. अभक्ष्यभक्षण	उदरक्रिमि
1. विष देनेवाला	छर्दि रोग
2. मार्ग तोड़ने वाला	पादरोगी (पाँव का रोगी)

पाप	रोग
23. धूर्तता	अपस्मार रोग
24. दूरे को कष्ट देने वाला	शूल रोग
25. दावाग्नि-दाता	रक्तातिसार
26. देव-मन्दिरया जलमें मूत्रोत्सर्ग करने वाला	भयंकर गुदारोग
27. गर्भपात	यकृत् और प्लीहा-सम्बन्धी एवं जलोदर रोग
28. मूर्तिभंजक	अप्रतिष्ठा (स्थिरता का अभाव)
29. दुष्ट वचन बोलने वाला	खण्डित
30. परनिन्दा	खल्वाट (गंजापन)
31. दूसरे का उपहास करने वाला	काना
32. सभा में पक्षपात करने वाला	पक्षाघात
33. स्वर्णचोर	कुलघ्न
34. काँसे की चोरी करने वाला	पुण्डरीक रोग
35. ताम्रचोर	औदुम्बररोग (एक प्रकार का कुष्ठ)
36. पीतल की चोरी	पिङ्गलाक्ष
37. मोती की चोरी	पिङ्गमूर्धज (कुछ भूरे बालवाला)

38. त्रपुहारी (सीसाचोर) — नेत्ररोगी
39. दुग्धचोर — बहुमूत्री
40. लौहचोर — कर्बूराङ्ग (चितकबरे अङ्गवाला)
41. तैल-चोर — खुजली रोग
42. कच्चा अन्न चुराने वाला — दन्तहीन
43. पक्वान्नहारी — जिह्वा रोग
44. विद्या और पुस्तक का हरण करने वाला — मूक
45. वस्त्रचोर — कुष्ठी
46. औषधि चोर — सूर्यावत (अर्धकपाली)
47. विप्र के रत्नों को चुराने वाला — अनपत्यता
48. देवमूर्तियों की चोरी — विभिन्न प्रकार के ज्वर
49. अगम्यागमन — अनेक रोग

इस प्रकार शुभाशुभ कर्मों का फल इस स्मृति में विस्तार से बतलाया गया है और सभी पापों के प्रायश्चित्त-विधान भी विस्तार से बतलाये गये हैं। अन्त में निर्देश है कि विष, उद्बन्धन, अग्नि, पत्थर, विद्युत् आदि प्राकृतिक उत्पातों से मृत व्यक्ति सद्गति को प्राप्त नहीं होते, प्रेमत्व को प्राप्त होते हैं। इन्हें कैसे सद्गति प्राप्त हो इसका विधान भी इसमें बतलाया गया है।



डॉ0 रामनारायणाचार्य
आचार्य
गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ,
आजादपार्क, इलाहाबाद

लेखक के प्रकाशित/सम्पादित/अप्रकाशित ग्रन्थों का विवरण

1. स्फोटमीमांसा संस्कृत अकादमी संस्कृत-संस्थान, लखनऊ, उ0प्र0 द्वारा पुरस्कृत। 2. मानवता सन्देश प्रथम संस्करण, 1992 ई0 में द्वितीय संस्करण श्रावणी पर्व 1998 ई0। 3. सारस्वतमुपायनम् गीता जयन्ती 1992 ई0 उ0प्र0 संस्कृत (प्रकीर्ण काव्यम्) अकादमी (संस्थान द्वारा पुस्कृत)। 4. मिश्र निबन्धावली (शास्त्रीय शोध-निबन्ध रत्नावली) 1993 संस्कृत संस्थान, लखनऊ, उ0प्र0 एवं संस्कृत अकादमी दिल्ली व राजस्थान संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत। 5. भारतीयसमङ्गलायतनम् प्रकीर्णकाव्यम् स्वर्ण जयन्ती वर्ष 1997 ई0 प्रो0 भोलाशङ्कर व्यास, वाराणसी, प्रो0 ताताचार्य रामानुजाचार्य व ब्रह्मर्षि कलानाथ प्रभृति विद्वानों द्वारा प्रशंसानुसंशा पत्र प्राप्त। 6. शाकद्वीपीय मगब्राह्मणविमर्शः 1963 ई0। 7. श्रीवैष्णवाचार्य प्रपत्तिः प्रकीर्णकाव्यम् वसन्तपञ्चमी संस्कृत वर्षम् 1999 ई0। 8. संस्कृतवर्षाभियानम् (कारगिलविजयः). संस्कृत संस्थान, लखनऊ उ0प्र0 शासन द्वारा कालिदास पुरस्कार से पुरस्कृत है, 2001 ई0। 9. श्री आल्वार-सूरि-स्तुतिपूर्ण गुरुपरम्परा, 2002 ई0। 10. संस्कृत सद्ग्रन्थों का शोधसार भारतीय संस्कृति गौरव 2002ई0। 11. भगवदाराधनविधिः 2002ई0। 12. ब्रह्मकर्म भगदाराधनविधिः 2002ई0। 13. ब्रह्मविद्या प्रकाश 2002ई0।

सम्पादित प्रकाशित ग्रन्थ

1. सिद्धान्तरहस्यम्, 2002 ई0। 2. शब्देन्दुशेखर की श्रैधरी टीका, 2002 ई0।

अप्रकाशित ग्रन्थविवरण

1. स्वरसाधनाविमर्शः, 2. प्राचीन राजधर्मपथप्रदर्शनम् , 3. भजन-संग्रह (स्वरचित) 4. मिश्रनिबन्धावली (द्वितीयभाग), 5. श्रीवचनभूषणम् ।